प्रारंभिक रचनाएँ

तीन भागों में संपूर्ण—

पहले दो भागों में कविताएँ, तीसरे भाग में कहानियाँ

सन् १९२९—१९३३ में

लिखित

बच्चन की अन्य प्रकाशित रचनाएँ

१—सतरंगिनी

२—आकुल अंतर

३—एकांत संगीत

४—निशा निमंत्रण

५—मधुकलश

६—मधुबाला

७—मधुशाला

८—खैयाम की मधुशाला

९—प्रारंभिक रचनाएँ—दूसरा भाग [कविताएँ]

१०—प्रारंभिक रचनाएँ—तीसरा भाग [कहानियाँ]

इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए पुस्तक के अंत में देखिए। नवीनतम रचनाओं के लिए लीडर प्रेस, प्रयाग से पत्र-व्यवहार कीजिए।

प्रारंभिक रचनाएँ

पहला भाग

(इस संग्रह की पहली अट्ठाइस कविताएँ पहले 'तेरा हार' के नाम से प्रकाशित हुई थीं)

बच्चन

ग्रंथ-संख्या—१०४

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भंडार
लीडर प्रेस,
इलाहाबाद

इस पुस्तक की पहली अट्ठाइस कविताओं का संग्रह 'तेरा हार' के नाम से सितंबर, १६३२ में रामनारायण लाल बुकसेलर, इलाहाबाद द्वारा और सितंबर, १६३६ में सुषमा निकुंज, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ था

वर्तमान स्वरूप में पुस्तक का

पहला संस्करण—अप्रैल, १९४३
दूसरा संस्करण—मार्च, १९४६
मूल्य १॥)
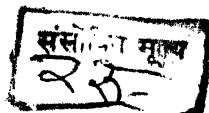
मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

विज्ञापन

आज 'प्रारंभिक रचनाएँ' प्रथम भाग का दूसरा संस्करण उपस्थित करते समय हमें बहुत प्रसन्नता हो रही है।

बच्चन की प्रारंभिक कविताओं का प्रथम संग्रह 'तेरा हार' के नाम से सन् १९३२ में प्रकाशित हुआ था। उनकी दूसरी प्रकाशित कृति 'मधुशाला' को देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। उसका कारण था। दोनों के विचार, भाव, भाषा, कल्पना, शैली—सभी में भारी अंतर था। लोग सोचते थे कि 'तेरा हार' का लेखक 'मधुशाला' के गायक के रूप में कैसे अवतरित हो गया। उन्हें क्या पता था कि 'तेरा हार' के पश्चात और मधुशाला के पूर्व कवि 'तेरा हार' जैसे पाँच संग्रह तैयार कर चुका था। यही कारण था कि ' रा हार' का पाठक जब मधुशाला पढ़ना आरंभ करता था तो उसे दोनों के बीच एक बड़ी भरी खाईं दिखाई पड़ती थी।

तीन वर्ष हुए बच्चन की समस्त प्रारंभिक रचनाओं को दो भागों में प्रकाशित करके हमने इसी खाईं को भरने का काम किया था। बच्चन के नित नूतन कविता के पत्र-पुष्पों को देखकर उसके बीज को जानने और समझने की उत्सुकता उनके पाठकों में स्वाभाविक ही रही है। यही कारण है कि उनकी प्रारंभिक रचना 'तेरा हार' के दो संस्करण समाप्त हो चुके थे पर उसकी माँग फिर भी बनी हुई थी। 'तेरा हार' से लोगों की जिज्ञासा केवल अंशतः होते देखकर हमने बच्चन की समस्त प्रारंभिक रचनाओं को प्रकाश में लाने की आयोजना की और संग्रह के प्रथम भाग में 'तेरा हार' को भी सम्मिलित कर लिया। वह अब स्वतंत्र रूप से नहीं छपता। पुस्तक का एक बड़ा संस्करण

तीन वर्षों के अंदर समाप्त कर पाठकों ने इसकी आवश्यकता और औचित्य को सिद्ध कर दिया है।

दूसरे भाग की सारी कविताएँ पहली बार प्रकाश में लाई गई थीं। वह भी समाप्त हो गया है और उसका भी नया संस्करण शीघ्र ही होने जा रहा है।

जहाँ तक संभव हो सका है कविताओं को रचना क्रम में रखने का प्रयत्न किया गया है। आशा है कवि के व्यक्तित्व और काव्य के विकास में रुचि रखनेवाले इस संग्रह से पर्याप्त लाभ उठा रहे हैं।

किसी कवि की नवीनतम रचनाएँ भले ही इस बात को बताएँ कि उसने अपनी कला में कितना ऊँचा स्थान प्राप्त किया है, लेकिन यह उसकी पहली और प्रारंभिक रचनाएँ ही हैं जो यह बता सकेंगी कि कवि ने कहाँ से चलकर और किन प्रयत्नों द्वारा वह उच्चता प्राप्त की है। बच्चन की समस्त रचनाओं में जो उनके व्यक्तित्व की एकता है वह उनकी नवीनतम कृति को भी उनकी पहली रचना से संबद्ध करती है। हमारी यह धारणा है कि आप उनकी नई रचनाओं का पूर्ण आनंद तभी उठा सकेंगे जब आप उनकी प्रारंभिक रचनाओं से भी भिज्ञ हों।

एक शब्द हम काव्य पारखियों से भी कहना चाहेंगे। यदि यह कविताएँ समय से प्रकाशित होतीं तो उनकी विशेषताओं पर दृष्टि जानी चाहिए थी। आज इन्हें खोजने का समय नहीं है। आज तो उनकी संभावनाओं को देखना चाहिए। कवि की नवीनतम कृतियों को दृष्टि में रखते हुए इनकी संभावनाओं पर किसी को संदेह न होगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि रचनाक्रम में इन्हें देखनेवाले इनसे किसी तरह निराश न होंगे।

इस नवीन संस्करण के साथ हम बच्चन के पाठकों को एक शुभ सूचना भी देना चाहते हैं। जैसा कि इस पुस्तक के मुख पृष्ठ पर ही संकेत किया गया है 'प्रारंभिक रचनाएँ' के पूर्व दो भागों के साथ हमने एक तीसरा भाग भी जोड़ दिया है और इस तीसरे भाग में होंगी बच्चन की कहानियाँ। यह कहानियाँ भी प्रायशः उसी काल की रचनाएँ हैं जिस काल की कि 'प्रारंभिक रचनाएँ' की कविताएँ। इसीलिए हमने इनको इसी नाम से प्रकाशित करना उचित समझा है। 'सुषमा निकुंज' द्वारा इन्हीं कहानियों को 'हृदय की आँखें' के नाम से प्रकाशित करने का विज्ञापन कई वर्ष हुए किया गया था, पर वह किन्हीं कारणों से कार्य रूप में परिणत न हुआ। इस प्रकाशन से बच्चन-साहित्य में जो नवीन वृद्धि हुई है, आशा है, वह उनके पाठकों को रुचिकर सिद्ध होगी।

— **प्रकाशक**

समर्पण

प्रिय श्रीकृष्ण और चंद्रमुखी को

सूची

प्रारंभिक रचनाएँ

पहला भाग

मंगलारंभ

प्रियतम, मैंने बनने को तेरी सुंदर ग्रीवा का हार,
ललित बहिन-सी कलियाँ छोड़ीं,
भाई-से पल्लव सुकुमार,
साथ-खेलते फूल, खेलती-
साथ तितलियाँ विविध प्रकार,
गोद-खेलाते हुए पिता-से
पौधे का मृदु स्नेह अपार,
माता-सी प्यारी क्यारी का
सहज सलोना, सरल दुलार,
बाल्य-सुलभ-चांचल्य चपलता
छोड़ी, बँधी नियम के तार,
छोड़ा निज क्रीड़ा-शुभस्थली
शुभ्र वाटिका का घर-द्वार;
प्रियतम, बतला दे आकर्षक है क्यों इतना तेरा प्यार?

संबोधन

बुलाऊँ क्यों मैं तुम्हें पुकार,
जान ले क्यों सारा संसार,
तुम्हें इन कलियों का मधु वास
खींच लाएगा मेरे पास।

रहें हम-तुम जब केवल साथ
पिन्हा दूँ हार तुम्हें चुपचाप,
न पाए हम दोनों का प्यार
कभी शंकालु विश्व में व्याप।

तुम्हारी ग्रीवा में सुकुमार,
सुशोभित हो यह मेरा हार;
खिले कलियों-सा मन सुकुमार
हमारा तुम्हें निहार-निहार!

स्वीकृत

घर से यह सोच उठी थी
उपहार उन्हें मैं दूँगी,
करके प्रसन्न मन उनका
उनके शुभ आशिष लूँगी।

पर जब उनकी वह प्रतिभा
नयनों से देखी जाकर,
तब छिपा लिया अंचल में
उपहार - हार सकुचाकर।

मैले कपड़ों के भीतर
तंडुल जिसने पहचाने,
वह हार छिपाया मेरा
रहता कब तक अनजाने ?

मैं लज्जित-मूक खड़ी थी,
प्रभु ने मुसकरा बुलाया,
फिर खड़े सामने मेरे
होकर निज शीश झुकाया !

आशे !

भूल तब जाता दुःख अनंत,
निराशा-पतझड़ का हो अंत
हृदय में छाता पुनः वसंत,

दमक उठता मेरा मुख म्लान,
देवि, जब करता तेरा ध्यान।

पथिक जो बैठा हिम्मत हार,
जिसे लगता था जीवन भार,
कमर कसता होता तैयार,

पुनः उठता करता प्रस्थान,
देवि, जब करता तेरा ध्यान।

डूबते पा जाता आधार,
सरस होता जीवन निस्सार,
सारमय फिर होता संसार,

सरल हो जाते कार्य महान,
देवि, जब करता तेरा ध्यान।

शक्ति का फिर होता संचार,
सूझ पड़ता फिर कुछ-कुछ पार,
हाथ में फिर लेता पतवार,
पुनः खेता जीवन-जलयान,
देवि, जब करता तेरा ध्यान।

नैराश्य

निशा व्यतीत हो चुकी कब की!
सूर्य-किरण कब फूटी!
चहल-पहल हो उठी जगत में,
नींद न तेरी टूटी!

उठा-उठाकर हार गई मैं,
आँख न तूने खोली,
क्या तेरे जीवन-अभिनय की
सारी लीला हो ली?

जीवन का तो चिह्न यही है
सोकर फिर जग जाना,
क्या अनंत निद्रा में सोना
नहीं मृत्यु का आना?

तुझे न उठता देख मुझे है
बार-बार भ्रम होता—
क्या मैं कोई मृत शरीर को
समझ रही हूँ सोता !

कीर

'कीर, तू क्यों बैठा मन मार,
शोक बनकर साकार,
शिथिल-तन मग्न-विचार ?
आकर तुझपर टूट पड़ा है किस चिंता का भार ?'

इसे सुन पक्षी पंख पसार,
तीलियों पर पर मार
हार बैठा लाचार;
पिंजड़े के तारों से निकली मानो यह झंकार—

'कहाँ वन-वन स्वच्छंद विहार !
कहाँ बंदीगृह द्वार !'
महा यह अत्याचार—
एक दूसरे का ले लेना जन्मसिद्ध अधिकार।

झंडा

हृदय हमारा करके गद्गद
भाव अनेक उठाता है,
उच्च हमारा होकर झंडा
जब फर-फर फहराता है।

अहे, नहीं फहराता झंडा
वायु-वेग से चंचल हो,
हमें बुलाती है मा भारत
हिला-हिलाकर अंचल को।

आओ युवको, चलें सुनें क्या
माता हमसे कहती आज,
हाथ हमारे है रखना मा
भारत के अंचल की लाज।

बंदी

'पड़े बंदी क्यों कारागार,
चले तुम कौन कुचाल,
चुराया किसका माल,
छीना क्या किसका जिसपर था तुम्हें नहीं अधिकार?'

'न था मन में कोई कुविचार,
न थी दौलत की चाह,
न थी धन की परवाह;
था अपराध हमारा केवल किया देश को प्यार!

शीश पर मातृभूमि-ऋण-भार,
उसे हूँ रहा उतार;
देश हित कारागार
कारागार नहीं, वह तो है स्वतंत्रता का द्वार!'

बंदी मित्र

जेल-कोठरी के मैं द्वार
बंदी, तुझसे मिलने आया,
नतमस्तक मन में शरमाया,
मित्र, मित्रता का मुझसे कुछ निभ न सका व्यवहार।

कैसे आता तेरे साथ,
देश-भक्ति करने का अवसर,
बड़े भाग्य से मिले मित्रवर!
मेरी क़िस्मत में वह कैसे लिखते विधि के हाथ!

मित्र, तुम्हारे मंगल भाल

अंकित है स्वतंत्र नित रहना,

मेरे, बंदी-गृह-दुख सहना,

'मैं स्वतंत्र, तू बंदी कैसे ?'—तेरा ठीक सवाल ।

मित्र, नहीं क्या यह अविवाद,

स्वतंत्र ही स्वतंत्रता खोता,

बंदी कभी न बंदी होता,

अपने को बंदी कर सकते जो स्वतंत्र-आज़ाद ।

कम न देश का मुझको प्यार ।

साथ तुम्हारा मैं भी देता,

अंग-अंग यदि जकड़ न लेता

मेरा, प्यारे मित्र, जगत का काला कारागार ।

कोयल

अहे, कोयल की पहली कूक !

अचानक उसका पड़ना बोल,

हृदय में मधुरस देना घोल,

श्रवणों का उत्सुक होना, बनना जिह्वा का मूक ।

कूक, कोयल, या कोई मंत्र,
फूँक जो तू आमोद-प्रमोद,
भरेगी वसुंधरा की गोद?
काया-कल्प-क्रिया करने का ज्ञात तुझे क्या तंत्र?

बदल अब प्रकृति पुराना ठाट
करेगी नया-नया शृंगार,
सजाकर निज तन विविध प्रकार,
देखेगी ऋतुपति-प्रियतम के शुभागमन की बाट।

करेगा आकर मंद समीर
बाल-पल्लव-अधरों से बात,
ढकेंगी तरुवर गण के गात,
नई पत्तियाँ पहना उनको हरी सुकोमल चीर।

बसंती, पीले, नीले, लाल,
बैंगनी आदि रंग के फूल,
फूलकर गुच्छ-गुच्छ में भूल,
झूमेंगे तरुवर शाखा में वायु-हिंडोले डाल।

मक्खियाँ कृपणा होंगी मग्न
माँग सुमनों से रस का दान,
सुना उनको निज गुन-गुन गान,
मधु-संचय करने में होंगी तन-मन से संलग्न !

नयन खोले सर कमल समान
वनी-वन का देखेंगे रूप—
युगल जोड़ी की सुछवि अनूप;
उन कंजों पर होंगे भ्रमरों के नर्तन गुंजान।

बहेगा सरिता में जल श्वेत,
समुज्ज्वल दर्पण के अनुरूप,
देखकर जिसमें अपना रूप,
पीत कुसुम की चादर ओढ़ेंगे सरसों के खेत।

कुसुम-दल से पराग को छीन,
चुरा खिलती कलियों की गंध,
कराएगा उनका गँठबंध,
पवन-पुरोहित गंध सुरज से रज सुगंध से भीन।

फिरेंगे पशु जोड़ ले संग,
संग अज-शावक, बाल-कुरंग,
फड़कते हैं जिनके प्रत्यंग,
पर्वत की चट्टानों पर कुदकेंगे भरे उमंग।

पक्षियों के सुन राग-कलाप—
प्राकृतिक नाद, ग्राम, सुर, ताल,
शुष्क पड़ जाएँगे तत्काल,
गंधर्वों के वाद्य-यंत्र किन्नर के मधुर अलाप।

इंद्र अपना इंद्रासन त्याग,
अखाड़े अपने करके बंद,
परम उत्सुक मन दौड़ अमंद,
खोलेगा सुनने को नंदन-द्वार भूमि का राग!

करेंगी मत्त मयूरी नृत्य
अन्य विहगों का सुनकर गान,
देख यह सुरपति लेगा मान,
परियों के नर्तन हैं केवल आडंबर के कृत्य!

अहे, फिर 'कुऊ' पूर्ण-आवेश !
सुनाकर तू ऋतुपति-संदेश,
लगी दिखलाने उसका वेश,
क्षणिक कल्पने मुझे घुमाए तूने कितने देश !

कोकिले, पर यह तेरा राग
हमारे नग्न-बुभुक्षित देश
के लिए लाया क्या संदेश ?
साथ प्रकृति के बदलेगा इस दीन देश का भाग ?

मध्याह्न

सुना था मैंने प्रातःकाल,
हुआ जब रजनी का अवसान,
लगे जब होने उडुगण म्लान,
हिलमिल पक्षीगण का गाना बैठ वृक्ष की डाल—

शारिका, श्यामा, तोते, लाल
आदि के कोमल विविध प्रकार
स्वरों का मधुर चढ़ाव-उतार,
सब के ऊपर कुहुक-कुहुक कोयल का देना ताल !

अहे, वह सुखद प्रभाती गान,
लगीं तप्त किरणें जब आने,
लगा पवन जब धूलि उड़ाने,
मध्य दिवस में, हाय, हाय, हो गया कहाँ लयमान !

ले गया राग-पुंज हर कौन,
किसके मन में पाप समाया,
किसे न औरों का सुख भाया,
बिठा दिया रागिनी प्रकृति को किसने करके मौन !

प्रकृति, तुम्हारे भी आनंद
क्षणिक मनुष्यों के-से होते ?
पल में आते, पल में खोते ?
कर्म-चक्र में मानव आते,
गाकर रोते, रोकर गाते।
रच न सका क्या चतुरानन दुख
से असम्मिलित तेरा भी सुख ?
रचा गया क्या हम दोनों के लिए एक ही फंद ?

अरे, न मेरा ऐसा ध्यान—
अब भी है हो रहा उसी लय
से वह गान, मुझे है निश्चय।
हुआ करेगा एक समान
संध्या तक यह मधुमय गान,
पक्षीगण जब स्वयं थकित हो
यह विचारते जाएँगे सो—
उठकर प्रातःकाल कौन हम छेड़ें नूतन तान।

और, नींद में स्वप्न अनेक
देखेंगे ऐसे—है लोक
एक, नहीं है जिसमें शोक,
मृदुल समीर जहाँ बहता है,
सदा बसंत बना रहता है,
घाम न होता, रात न आती,
जहाँ सदा ही संध्या छाती,
भूख जहाँ पर नहीं सताती,
प्यास नहीं है लगने पाती,
जहाँ न मृत्यु-जन्म का नाम,
जहाँ नहीं जीवन-संग्राम,

जहाँ न कोई करता द्वेष,
जहाँ नहीं भय का लवलेश,
अगणित खग सर्वदा चहकते,
कंठ नहीं पर उनके थकते,
उत्कंठित स्वर से है गाना जहाँ काम बस एक !

सुनूँ न फिर मैं क्यों कलरोर ?
आह ! भेद मैंने अब पाया—
बहरा अपना कान बनाया
भय अशांतिमय मचा-मचाकर हमने ही तो शोर !

चुंबन

ऐ छोटे विहंग सुकुमार !
तेरे कोमल चंचु-अधर से
निकल रहे स्नेहाप्लुत स्वर से
लगता, कोई करे किसी को निर्भय चुंबन-प्यार !

किसको करते चुंबन-प्यार ?
क्या मानव आँखों से देखी
गई न बुद्धि-चक्षु अवरेखी
उसको, ऊषा काल बहे जो शीतल-मंद बयार !

या सुमनों में शिशु सुकुमार,

जो सुगंध का अब तक सोया,
रजनी के स्वप्नों में खोया,
उसे जगाते धीमे-धीमे करके चुंबन-प्यार !

या तुम शशि-किरणों के तार

से जो हाथ उन्हें चुम्बन कर
और सितारों का प्रकाश वर
चूम-चूम सस्नेह विदा करते हो, अंतिम बार !

या तुम बाल सूर्य के हाथ,

स्वर्ण-रंग में गए रँगाए,
गए तुम्हारी ओर बढ़ाए,
करते हो आभूषित अपने रजत-चुंबनों साथ ?

या तुम उस चुंबन का, तात,

पाठ याद करते उठ भोर,
जिसे लिटा अंचल-पर-छोर
अपने तुमको, मातृ-विहंगिनि ने सिखलाया रात ?

या तुम वह चुंबन प्रति भोर

उठकर याद किया करते हो,

(मुझे बताते क्यों डरते हो !)

जिससे तुम्हें किसी ने भेजा जीवन के इस ओर !

तब की तो है मुझे न याद,

पर अतीत जीवन के चुंबन

कितने चमका करें हृद्गगन,

जिनकी मूकस्मृति मेरे मन भरती मधुर विषाद !

यदि न जगत के धंधे-फंद

होते, मानस-गगन घूमता,

प्रति चुंबन को पुनः चूमता,

सदा बना मैं तुझ-सा रहता एक विहग स्वच्छंद !

मधुकर

उमड़ - घुमड़ काले - काले

बादल का नभ में घिर आना,

रिमझिम रिमझिम करके अवनी-

तल पर पानी बरसाना।

सिमिट - सिमिटकर एक
सरोवर में जल का जा भरजाना,
मंद पवन के झोंकों से
लहरों का उसपर लहराना।

कंज-कली का झाँक - झाँक
जल के बाहर, भीतर जाना,
किसी व्यक्ति को देख न बाहर,
सहसा सिर ऊपर लाना।

लोक लाज के कारण मुँह पर
डाल हरा घूँघट आना,
चपल तरंगों की संगति से
पर उच्छृंखल बन जाना।

घूँघट हटा देख सर-दर्पण
में मुख अपना मुसकाना,
सूर्य देव का उसके अधरों
तक अपना कर फैलाना।

मंद समीरण का आ-आकर
मीठे धक्के दे जाना,
विहँसित होना कंज कली का
फूली - फूली न समाना।

करने को रस पान कली का
तब फिर मधुकर का आना,
छूते ही रस की मदिरा
उसका मतवाला हो जाना।

दिन भर मँडरा-मँडरा रस
पीना, पी-पी रस मँडराना,
जब हो जाना थकित शांत हो
कली-अंक में सो जाना।

आँख ऊपरी मुँद जाना
भावना नयन का खुल जाना,
स्वप्न देव का उसपर
स्वप्नों का बुनना ताना-बाना।

सकल विश्व का पिघल-पिघलकर
एक सरोवर बन जाना,
जग का सब सौंदर्य सिमटकर
कली - रूप उसपर आना !

सब कलियों के मन का मिलकर
एक सुमधुकर हो जाना,
इस सर-कलिका की सुषमा का
गुन-गुन करके गुण गाना !

मधुकर का यह गान श्रवण कर
बार - बार पुलकित होना,
तन की सुधि रस से खोई थी
मन की सुधि स्वर से खोना !

संध्या का होना रवि का
अस्ताचल को जा छिप जाना,
कमल दलों को सकुचित करने
वाली रजनी का आना !

कोमल कमल दलों में दबना
मधुकर का कोमलतम तन,
दुसह वेदना सह उसका
करना समाप्त प्यारा जीवन।

सुखमय दृश्य दिखाकर उसका
अंत दुःखमय दिखलाना।
मधुकर के जीवन हरने का
सब सामान किया जाना!

इसी लिए सौंदर्य देखकर
शंका यह उठती तत्काल—
कहीं फँसाने को तो मेरे
नहीं बिछाया जाता जाल?

ऐसी शंकाओं में फँसता
है क्यों? बतला, मानव मंद!
हर सुंदरता में तुझको
अनुभव करना था परमानंद।

सुख-दुख क्या है ! हृदय-भावना
जिसने है जैसा माना,
मधुकर ने अपने मरने को
था अनंत सुखमय जाना !

दुख में

'पड़ी दुखों की तुझपर मार !
दुःखों में सुख भरा जान तू,
रो-रोकर मुख न कर म्लान तू,
हँस, हँस, हलका हो जाएगा तेरे दुख का भार।

निज बल पर जिनको अभिमान
संकट में साहस दिखलाते,
दुःखों को हैं दूर हटाते;
दुख पड़ने पर जो हँसते हैं वही वीर-बलवान'।

'मिले मुझे दुख लाखों बार,
पर, दुख में सुख सार समाया—
व्यंग, समझ मैं कभी न पाया।
सुख में हँसूँ, दुखों में रोऊँ—सीधा-सा व्यवहार।

कोमल से कोमल भी शूल
जब-जब है तन मेरे गड़ता,
बच्चों-सा मैं हूँ रो पड़ता;
काँटों को मैं कभी न अब तक समझ सका हूँ फूल।

एक नियम जीवन में पाल
रहा सदा से हूँ मैं अविचल,
कोई कहे बली या निर्बल,
उन्हें चुभा रहने देता हूँ, देता नहीं निकाल !'

दुखों का स्वागत

नदियाँ नीर भरें जलनिधि में
जो जल-राशि अघाए,
शुष्क, जल-रहित मरुस्थली को
दिनकर और तपाए।

हृष्ट-पुष्ट नित स्वस्थ रहे; कृश-
क्षीण रुग्न हो जाए,
लक्ष्मी के मंदिर में स्वागत
धनी-महाजन पाए।

अंधकार अंधों को मिलता,
उसे नयन जो पाए,
ज्योति मिले, यह नियम जगत का
सम समान को धाए।

प्यार पास जाए प्यारों के,
सुख, सुखियों पर छाए,
आशिष आशिषवानों पर, मुझ
दुखिया पर दुख आए!

आदर्श प्रेम

प्यार किसी को करना, लेकिन—
कहकर उसे बताना क्या?
अपने को अर्पण करना पर—
औरों को अपनाना क्या?

गुण का ग्राहक बनना, लेकिन—
गाकर उसे सुनाना क्या?
मन के कल्पित भावों से
औरों को भ्रम में लाना क्या?

ले लेना सुगंध सुमनों को,
तोड़ उन्हें मुरझाना क्या ?
प्रेम-हार पहनाना, लेकिन—
प्रेम-पाश फैलाना क्या ?

त्याग-अंक में पलें प्रेम-शिशु
उनमें स्वार्थ बताना क्या ?
देकर हृदय हृदय पाने की
आशा व्यर्थ लगाना क्या ?

तुमसे

नहीं चाहता तुलसी-दल बन
शीश तुम्हारे चढ़ पाऊँ,
नहीं, हार की कलियाँ बनकर
गले तुम्हारे पड़ जाऊँ।

नहीं, भुजाओं में रख तुमको
इन हाथों को करूँ पवित्र,
नहीं, हृदय के अंदर बंदी
कर के रखूँ तुम्हारा चित्र।

नहीं चाहता दिखलाने को
तव भक्तों का वेश धरूँ,
नहीं, सखा बन सदा तुम्हारे
दाएँ-बाएँ फिरा करूँ।

इच्छा केवल, रजकण में मिल
तव मंदिर के निकट प
आते-जाते कभी तुम्हारे
श्रीचरणों से लिपट पड़ूँ।

मधुर स्मृति

याद मुझे है वह दिन पहले
जिस दिन तुझको प्यार किया,
तेरा स्वागत करने को जब
खोल हृदय का द्वार दिया।

मन मंदिर में तुझे बिठाकर
तेरा जब सत्कार किया,
झुक-झुक तेरे चरणों का जब
चुंबन बारंबार किया।

स्नेहमयी वह दृष्टि प्रथम ही
थी जिसने तुझको देखा,
याद नहीं है मुझे, तुझे
देखा पहले या प्यार किया !

हर्षित होकर क्यों न सराहूँ
बार-बार उस दिन के भाग,
जिस दिन तूने प्रेम हमारा
खुले हृदय स्वीकार किया !

दुखिया का प्यार

'प्रेम का यह अनुपम व्यवहार !—
पास न मेरे हैं वे आते,
मुझे न अपने पास बुलाते,
दूर-दूर से कहते हैं, करता हूँ तुझको प्यार !'

'आपदा के ऐसे आगार—
जहाँ किसी को छू हम देते,
घेर उसे दुख संकट लेते,
मिलकर तुझसे क्यों तुझ पर भी डालूँ दुख का भार ?

विरह के दुख सौ नहीं, हज़ार
सहा करूँ यदि जीवन भर मैं,
तुझे न दुखित बनाऊँ पर मैं,
'तू है सुखी'—यही तो मेरे जीवन का आधार।
प्रेम का ही तोड़ूँगा तार—
(चाहे मृत्यु भले ही आए)
ज्ञात मुझे यदि यह हो जाए—
दुखी बना सकता है तुझको इस दुखिया का प्यार' !

कलियों से

'अहे, मैंने कलियों के साथ,
जब मेरा चंचल बचपन था,
महा निर्दयी मेरा मन था,
अत्याचार अनेक किए थे,
कलियों को दुख दीर्घ दिए थे,
तोड़ इन्हें बागों से लाता,
छेद-छेद कर हार बनाता !
क्रूर कार्य यह कैसे करता,
सोच इसे हूँ आहें भरता।
कलियो, तुमसे क्षमा माँगते ये अपराधी हाथ।'

'अहे, वह मेरे प्रति उपकार !

कुछ दिन में कुम्हला ही जाती,
गिरकर भूमि-समाधि बनाती।
कौन जानता मेरा खिलना ?
कौन, नाज़ से डुलना-हिलना ?
कौन गोद में मुझको लेता ?
कौन प्रेम का परिचय देता ?
मुझे तोड़ की बड़ी भलाई,
काम किसी के तो कुछ आई;
बनी रही दो-चार घड़ी तो किसी गले का हार।'

'अहे, वह क्षणिक प्रेम का जोश !

सरस-सुगंधित थी तू जब तक,
बनी स्नेह-भाजन थी तब तक।
जहाँ तनिक-सी तू मुरझाई,
फेंक दी गई, दूर हटाई।
इसी प्रेम से क्या तेरा हो जाता है परितोष !'

'बदलता पल-पल पर संसार,

हृदय विश्व के साथ बदलता,
प्रेम कहाँ फिर लहे अटलता !

इससे केवल यही सोचकर,
लेती हूँ संतोष हृदय भर—
मुझको भी था किया किसी ने कभी हृदय से प्यार !"

विरह विषाद

चंद्र ! आते ही मृदुल प्रभात—
भू का रवि जब अंचल धरता,
किरण, कुसुम, कलरव से भरता
उसे, बना लेते क्यों अपना मलिन, हीन-द्युति गात ?

निशा रानी का विरह-विषाद ?
शोक प्रकट क्यों इतना करते,
छिपते जाते आहें भरते;
मिलन प्रणयिनी से तो निश्चित एक दिवस के बाद।

नहीं कुछ सुनते मेरी बात ?
देव, दुख-विरह क्षणिक तुम्हें जब,
इतना होता, बतलाओ अब,
धरें धैर्य मानव हम क्यों तब,
हो वियोग जिनका मिलना फिर दूर ? निकट ? अज्ञात ?

मूक प्रेम

हमारी स्नेह-मूर्ति, कुछ बोल !
भावना के पुष्पों के हार,
गूँथ सुकुमार स्नेह के तार,
चढ़ाए मैंने तेरे द्वार,
भाए तुझे, न भाए—कह दे कुछ तो मुँह को खोल।

शास्त्र के सिद्ध, सत्य, अनमोल
वचन बतलाते युग प्राचीन
भक्त जब होता भक्ति-विलीन,
श्रवणकर उसके सविनय, दीन
वचन, मूक पाषाण मूर्तियाँ भी पड़ती थीं बोल !

आ गया, हाय, समय अब कौन ?
हैं सजीव जो मधुर बोलतीं,
बात-बात में अमृत घोलतीं,
सहज हृदय के भाव खोलतीं,
वे भी क्या भावना-भक्ति से हो जाएँगी मौन!

नयन में स्नेह भरा, मत मोड़
आँख, कर प्रकटित अपना भाव,
भयंकर मुझसे अधिक दुराव;
जानती अकथित प्रेम प्रभाव ?
प्रबल धार यह बाहर आती बाँध हृदय का तोड़ !

उपहार

जब लेकरके कुछ उपहार
मैं तेरे संमुख आता हूँ,
मन में कितना शरमाता हूँ !
अरे, कहाँ ये तुच्छ वस्तुएँ, कहाँ हमारा प्यार !

जग के वैभव का भंडार
एक स्वप्न में मैंने पाया,
चरणों में ला उसे चढ़ाया
तेरे, पर क्या हो पाया संतुष्ट हमारा प्यार !

जाग्रत में मैं निर्धन-दीन;
क्या देने को तुझको लाऊँ,
जिससे अपना प्यार दिखाऊँ ?—
इसी सोच में हृदय हमारा निशि-दिन चिंताधीन !

इससे देखूँ एक बचाव—
अपना सब अस्तित्व मिटाऊँ,
तुझमें ही बिलकुल मिल जाऊँ,
रहे न हृदय जहाँ हो देने दिखलाने का भाव !

मेरा धर्म

धर्म हमारा पूछो, प्राण ?—
किसे समझता मैं भगवान,
किसका उठकर करता ध्यान,
किसे हृदय में अपने देता सब से उच्चस्थान ?

धर्म हमारा पूछो, प्राण ?—
किसे समझता प्राणाधार,
किसकी करता भक्ति अपार,
समझूँ अंदर चमक रही है किसकी ज्योति महान ?

धर्म हमारा पूछो, प्राण ?—
ईश्वर को मैं नहीं जानता,
उसकी सत्ता नहीं मानता,
जिसे न देखा जाना कैसे उसको लेता मान ?

जगती में मैं अब तक, प्राण !
केवल एक प्रेम पहचानूँ,
उसे हृदय का स्वामी मानूँ,
सब कहते भगवान प्रेम है—प्रेम हमें भगवान !

धर्म हमारा पूछो, प्राण !—
कौन शक्ति मेरे तन देता,
कौन तरी जीवन की खेता,
कौन हमारा जीव ?—जान कर बनती हो अनजान ?

नयन करो मत नीचे, प्राण !
शक्ति तुम्हीं हो मुझको देती,
तुम्हीं तरी जीवन की खेती,
तुम्हीं जीव हो, प्राण, हमारी—और तुम्हीं भगवान !

'यह कैसे ?'—तुम पूछो, प्राण !
ईश-जीव में भेद नहीं है,
जहाँ जीव है ईश वहीं है,
'प्रेम' 'प्राण' तुम दोनों मेरी—शंकर वचन प्रमाण—

धर्म हमारा पूछो, प्राण !
किसको रक्षक अपना कहता,
सदा आसरे जिसके रहता,
करा सरलता से लेने को ईश्वर से पहचान ?

सौंदर्य ने तेरे, प्राण ?
मुझे प्रेम का पाठ पढ़ाया,
मेरे ईश्वर तक पहुँचाया,
इससे कहूँ उसे मैं अपना ईश्वर-दूत सुजान ।

धर्म हमारा पूछो, प्राण !
धर्म-ग्रंथ है कौन हमारा,
शंकाओं में कौन सहारा,
ज्ञान बढ़ाऊँ किससे ?—मानूँ किसके वाक्य प्रमाण ?

तेरे भोलेपन में, प्राण !
भरा ज्ञान का सारा सार,
सदा उसी का लूँ आधार,
करता उसका पाठ—वही है मेरा वेद—कुरान ।

धर्म हमारा पूछो, प्राण !—
मेरा कौन पवित्र-स्थान,
शुचिता मुझको करे प्रदान,
जिसकी ओर तीर्थ-यात्री बन करता मैं प्रस्थान ?

हर्ष हमारा मक्का, प्राण !
हम-तुमने मिल उसे बनाया,
प्रेम वहाँ पर बसने आया,
नहीं वासना, पाप वहाँ पर पाते वासस्थान ।

धर्म हमारा पूछो, प्राण ?
स्वर्ग कहाँ मैं अपना मानूँ ?
प्रेम, न इसका उत्तर जानूँ,
परे भूमि से लोकों का है कुछ भी मुझे न ज्ञान ।

अजर, अमर के कभी विचार
नहीं हृदय में मेरे आए,
पल भर का जीवन कट जाए,
इसी तरह बस तुझे गोद में लेकर करते प्यार !

संकोच

प्रियतम-द्वार खड़ी हूँ मौन।
यहाँ भला कब सोचा आना?
मेरा, उनका, दर्शन पाना!
खींच मुझे इतनी दूरी से लाया बरबस कौन!

बंद निर्दयी क्यों हैं द्वार!
'मेरे प्यारे'! 'प्रियतम'! 'प्रियवर'!
उन्हें पुकारूँ क्या मैं कहकर?
लेकर नाम? पूछती अपने मन से बारंबार!

मौन खड़ी; खटकाऊँ द्वार—
अरे, हाथ खाली ही आई!
देने को उपहार न लाई!
अरी, करेगी किससे प्रियतम की पूजा-सत्कार!

क्षमा कपट का हो व्यवहार—
यहीं कहीं बैठूँगी छिपकर,
आएँगे, देखूँगी पल - भर,
बस लौटूँगी उस पल का हृत्पट पर चित्र उतार।

प्रेम का आरंभ

प्रियतम, दिवस तुम्हें वह याद !

नभ में निकल तरैयाँ-तारे
छिटक रहे थे प्यारे-प्यारे,
हरी डालियों का धर अंचल,
पवन हो रहा था कुछ चंचल,
कलियों पर झुक रहे कुसुम थे,
वृक्ष तले बैठे हम तुम थे,
प्रथम प्रेम का जिस दिन तुम पर छाया था उन्माद !

प्रेम, प्रेम, उस दिन की याद
नहीं चाहता मुझे दिलाओ,
भूल उसे अब तुम भी जाओ।
वह दिन उनकी याद दिलाता,
जब न तुम्हारा मुझसे नाता।
भुला दिए मैंने दिन सारे,
बिना प्रेम जब रहा तुम्हारे।
तब की तो कल्पना हृदय में मेरे भरे विषाद !

यद्यपि वह दिन था सुकुमार,
पर न मुझे आकर्षित करता,
अब, न भावनाओं से भरता।
गिना दिनों से जाने हारा,
नहीं प्रेम अब रहा हमारा।
आदि, अनंत प्रेम का कैसा!
मुझको तो अब लगता ऐसा—
तुझे सदा से मैं करता था इसी तरह से प्यार!

आत्म संदेह

प्राण, बहुत मैं तुझसे दूर!
कभी हृदय से बसने वाली
तुझे समझता मूर्ति निराली;
हाय, सुदृढ़ विश्वास आज होता वह मुझसे दूर!

तुझपर आते कष्ट-कलाप,
पर न उन्हें मैं बिल्कुल जानूँ,
हृदयासीन तुझे पर मानूँ!
हो सकता है इससे भी क्या बढ़कर व्यर्थ प्रलाप!

इच्छा तो थी मेरी, प्राण !
काँटे से भी कष्ट तुझे हो,
तत्क्षण अनुभव वही मुझे हो,
बड़े-बड़े तेरे दुःखों का भी पर मुझे न ज्ञान !

इच्छा थी तेरा दुख-भार
मैं अपने ही ऊपर ले लूँ,
सुख अपने सब तुझको दे दूँ,
पर तेरा दुख अल्प हटाने में भी हूँ लाचार।

कहता तुझसे प्रेम अमान।
किंतु देख उसकी निर्बलता
हृदय हमारा भरे विकलता,
और कभी संदेह हमारे मन में उठे महान !

सुने प्रेमियों के आख्यान—
घाव एक तन में लग जाता
रक्त-धार दूसरा बहाता—
सच थे वे, थे या कवियों के बस काल्पनिक उड़ान !

मौत प्रेम से जाती हार;
किसी एक को लेने आती,
उद्यत उसका प्रेमी पाती,
उसके बदले चलने को—चुप हो करती स्वीकार।

सत्य कथाओं के आधार
यदि थे वे तो क्यों उनका-सा
प्रेम नहीं मैं हूँ सकता पा!
चला गया क्या साथ उन्हीं के जग से सच्चा प्यार!

या मैं इतना मूर्ख गँवार,
नहीं समझ जो अब तक पाया
छली हृदय की छलमय माया,
ढोंग प्यार का करता था, कहता था—करता प्यार।

मुझको है संदेह अपार
प्रेम नहीं क्या तुम थे करते,
केवल उसका दम थे भरते;
हृदय, सशंक नयन से मैं अब देखूँ तेरा प्यार।

अब तक थे क्या करते स्वाँग
हृदय, प्रेम का, क्यों न बताते ?
धोखे में क्यों उसको लाते ?
भीख प्रेम की तुमसे आकर कौन रही थी माँग।

हृदय हमारी सुन फटकार
फूट-फूट कर हो तुम रोते,
कहने को तो हो कुछ होते,
पर क्यों रुक जाते ? मैं सुनने को तो हूँ तैयार।

निर्बल प्रेम—करूँ स्वीकार,
पर मेरा अपराध बताते
जो, या मुझपर दोष लगाते
जिसका, उसके कारण सारा अपराधी संसार।

नवल-सृष्टि के प्रथम प्रभात
प्रकट हुआ शिशु मानव जब था,
गोद खुशी की लेटा तब था,
पावन-प्रेम-दुग्ध-सिंचित था उसका कोमल गात।

किंतु अभागा मानव-बाल
मुख से हटा-हटाकर अंचल,
फेर-फेर अपने दृग चंचल,
लगा देखने रंग-बिरंगे जग का रूप विशाल।

बालक-वंचक, निर्दय, नीच
जग ने उसका चित्त लुभाया,
मूक नयन से उसे बुलाया,
कौतुक ही वह उतर गोद से गया विश्व के बीच।

विविध भावना के फल-फूल
खाकर उदर लगा निज भरने,
सकल दिशा में लगा विचरने;
गोद खुशी की और प्रेम का दूध गया वह भूल।

उस दिन से प्रतिदिन अविराम
लगा प्रेम-बल उसका घटने,
प्रेम-तेज मुख पर से हटने,
किंतु भयंकर इससे भी तो होना था परिणाम।

हाय, वासना-मद का पान
करके मानव बन मतवाला,
विषय-कीच से कर मुख काला,
लगा उपेक्षित मातृ-दुग्ध का करने अब अपमान !

सदा—हर्षिता मा को शोक
हो न सका, पर हुआ मलाल,
स-पय-प्रेम उड़कर तत्काल
चली गई बन गया हमारा शुष्क, शून्य यह लोक ।

गई जहाँ मानव व्यवहार
में बच्चों का भोलापन था,
निश्छल मन था, निर्मल तन था,
सदा सरलता जिनके मुख का करती थी शृंगार ।

गर्व, स्वार्थ का जहाँ अभाव
स्वच्छ-हृदयता दिखा रही थी,
जिसे नम्रता सिखा रही थी,
मधुर-वचन-जल में नहलाकर जल-सा नम्र स्वभाव ।

जहाँ मनुष्यों के आचार
को न प्रलोभन ललचाता था,
और जहाँ पर सुंदरता का
निर्मल नयनों ही से होता था स्वागत—सत्कार।

संतति-हित विधि-विहित प्रपंच
भी न जहाँ मानव आचरता!
शिशु-इच्छा जब मन में करता
सुंदर शिशु नट-सा आ करता शोभित शशि का मंच।

अभिनय करता मन-भर मोद,
फिर क्रीड़ा करते अभिराम,
उतर चंद्र-किरणों को थाम,
पल में लगता उछल-कूद करने दंपति की गोद।

वहाँ विषय को सुख-आनंद
नहीं स्वप्न में कोई भूल
कभी समझता; सब सुख-मूल
इस पृथ्वी पर समझा जाता, भाग्य हमारे मन्द!

योग्य प्रेम के वासस्थान
भला कहाँ मिलता इस भू पर !
इसीलिए वह इसे छोड़कर
चला गया निज मधुरस्मृति का हमको छोड़ निशान !

मुझे प्रेम से अब भी प्यार।
मधुर वस्तु होती प्यारी, पर
मधुरस्मृति होती है प्रियतर;
विरले प्रेमी अब लेते हैं उसका ही आधार।

स्वप्न प्रेम के जो सुकुमार—
उन्हें देखना अब तुम छोड़ो,
पूर्व-भावना-निद्रा तोड़ो।
कहाँ लौट सकता है जग में पहले-का-सा प्यार !

अधःपतन मानव का देख
शंका ऐसा भय उपजाए—
कहीं न दिन ऐसा भी आए,
हृत्पट से जब मिट जाए स्नेहस्मृति की भी रेख !

जन्म दिवस

आ याद दिलाएँ जन्मदिवस की
हर्ष अनेक, अपार तुम्हें।

हो, और, मुबारक जन्म-दिवस
प्यारी कविते, सौ बार तुम्हें।

हम दीन बड़े, हम दूर पड़े,
क्या भेंट करें उपहार तुम्हें?

संतोष इसीसे कर लेना
सौ बार हमारा प्यार तुम्हें।

बाँसुरी

खूब जगे रे तेरे भाग!
कल करील वन में थी खोई,
अनदेखी, अनसुनी, बिगोई;
अधरों से लग आज कृष्ण के पीती है रस-राग!
धन्य-धन्य रे तेरे भाग!

अपने प्यारे-प्यारे हाथ
रखता है तेरे अधरों पर
कृष्ण, मुझे है हर्ष देखकर;
तेरा भाग सिहाता करता द्वेष न तेरे साथ!
तुझे मुबारक तेरा नाथ!
मुझे इसी में हर्ष महान,
तुम दोनों हिल-मिलकर गाओ,
प्रेम-राग से विश्व गुँजाओ,
दूर-दूर से सुना करूँ मैं भी वंशी की तान!
मुझे इसी में हर्ष अमान!

चित्र-समर्पण

आज हृदय में उठे विचार—
कलम छोड़ तूलिका उठाऊँ,
रंग एक मैं चित्र बनाऊँ,
उसे समर्पित करने तुझको आऊँ तेरे द्वार।
मेरा चित्र प्रथम सुकुमार
लगता है न तुझे अति रुचिकर!
नहीं बोलती क्यों तू सत्वर?
आँख मूँद, सिर उठा ला रही मन में कौन विचार!

चतुर चित्रकारों के संग
प्रेम, न मेरी तुलना करना,
मत लज्जा से मुझको भरना,
उनके आगे मेरा कोमल मान न करना भंग।

मेरी तुलना उनके संग
तब न चित्त में भय उपजाए,
देख उसे भी यदि तू पाए,
इन रंगों के बीच छिपा जो एक हृदय का रंग!

रिहाई

जेल-दंड का तेरे काल
हुआ समाप्त, बधाई देने
गए मित्र सब तुझको लेने,
नहीं तुझे मैं लेने आया, पर, ले स्वागत-माल!

मित्रों में अनुपस्थिति जान
मेरी, तुमने किया विचार
होगा, घटा हमारा प्यार
चित्र वियोग से! मित्र, कभी मत करना ऐसा ध्यान!

करता लज्जित बैठ विचार—
कर न सका, मैं काम तुम्हारा,
किया न यत्न तुम्हें छुटकारा
मिलता जिससे; यही बधाई देने का अधिकार !

गर्व सहित लेकर शुभ हार
तुम्हें पिन्हाने तब मैं आता,
तब मैं मन आनंद मनाता,
तुम्हें छुड़ाकर जब मैं लाता तोड़ जेल - दीवार।

हेम की मृत्यु

कहाँ गए तुम, प्यारे हेम !
अम्मा, बाबू जी को तजकर,
रोम - रोम में दुसह दुःख भर !
अपनी नन्हीं 'प्रेम' बहन का भूल गए क्या प्रेम ?

जिससे जब मैं पूछूँ, 'ब्याह
बता करेगी अपना किससे ?'
तुम्हें देखती कहती 'इससे'!
उसे छोड़कर चले गए ! क्या उसपर बीती ! आह !

सुना तुम्हारा कोमल गात
दिन भर के ज्वर में मुर्झाया !
कौन चोर था छिपकर आया,
तोड़ लिया तुमको जैसे ही हुई अँधेरी रात !

पाप हुए होंगे अज्ञात,
है मनुष्य जिससे दुख पाता;
नहीं समझ में पर यह आता—
तुम अबोध शिशुओं के ऊपर क्यों होते आघात !

जग का यदि कोई भगवान,
और न्याय का दिन आएगा,
क्षमा क्रूर का हो पाएगा
कभी नहीं, शिशुओं की हत्या का अपराध महान।

पत्रोत्तर

आज विजय पर अति सुख मान
पत्र एक तुमने लिख भेजा,
जिसमें तुमने मुझे सहेजा—
तुम्हें बनाकर मैं लिख भेजूँ एक विजय का गान।

जिसकी सब आशाएँ चूर्ण
होतीं रहीं सदा जीवन में,
विजयोल्लास कहाँ उस मन में,
विजय - वीचि सर में कैसी जो नीर - पराजय पूर्ण !

करना मुझको क्षमा प्रदान,
मित्र, तुम्हारी यदि आज्ञा यह
अनपालित मुझसे जाए रह,
कुछ न लिखा मैंने जो मेरे अंतर बीच उठा न।

शायद मैं लिख पाऊँ गीत,
पूर्ण विजय-विवरण जब पाऊँ,
जिसमें मैं इसपर पछताऊँ,
क्यों न मिल सकी, नायक, तुमको और चमकती जीत ?

नभचुंबी आशाएँ पोष
रहा सदा जीवन में था मैं,
शायद सका न इससे पा मैं,
भूमि पर मिली तुच्छ सफलताओं में कुछ संतोष।

'हुआ' 'किया' 'पाया' से पात
किया न दृष्टि कभी जीवन पर,
आँखें रक्खीं उसपर दृढ़ कर,
हो न सका जो, पा न सका जो, कर न सका जो बात।

गुदगुदी

कोमल अंगों को छू, प्राण!
बारंबार पूछती हो तुम—
हँसी तुम्हारी हुई कहाँ गुम,
अब न हँसा करते हो क्यों तुम खिलते फूल समान?

तुम्हें दिलाता हूँ विश्वास—
मुझे न अपना दुःख सताता,
मुझे न अपना शोक दबाता,
दुखी नहीं हो सकता हूँ मैं तुम जब मेरे पास।

अब दुख का औ' सुख का भाग
अपना ही रह गया न मेरा,
जब से मैंने हृदय बिखेरा,
जब से करना सीखा सबसे दुनिया में अनुराग।

जग है नाटक दुःख-प्रधान—
दृढ़ यह मुझपर होता जाता,
सुख-प्रतीति हूँ खोता जाता,
उसे देखते हँसना उसके दुख का है अपमान।

आओ इस खिड़की के द्वार,
सुनो प्रभंजन है जो आता,
होता जग पर, भरकर लाता—
आह, विलाप, रुदन, कोलाहल, क्रंदन, हाहाकार!

होता है जग में अविराम—
पाता एक, हज़ारों खोते,
हँसता एक हज़ारों रोते,
एक-एक सुख का दुनिया में है लाखों दुख दाम!

देखा जाता जगत अतीव
एक रहे ऊपर—सौ गड़ते,
बसता एक, हज़ार उजड़ते,
लघु झोपड़ियाँ दबतीं लाखों एक महल की नीव!

जग का, हा, निर्दय व्यापार!
पौधे कितने शीश कटाते—
पुष्प हज़ारों तोड़े जाते,
उन्हें छेदकर गूँथा जाए एक गले का हार!

दुःखद कितने सुमन अजात,
खिल न रूप सौरभ कुछ लाते,
जो लाते, कब रहने पाते,
कितने सुमन सूख जाते जीवन के प्रथम प्रभात!

कितने प्रेमीगण की चूर
बड़ी-बड़ी आशा हो जाती,
इच्छित घड़ी न उनकी आती,
क्षितिज-रेख-सी बस वह रहती सदा पहुँच से दूर!

कितनों के अति उच्च विचार
केवल सपने ही रह जाते,
कितने उनपर हैं पछताते,
कितने उदासीन हो जाते उनकी याद बिसार!

क्षणभंगुर जीवन के बीच
बड़ी-बड़ी उम्मीदें करना,
बड़े-बड़े मंसूबे भरना,
कौन सिखाता पहले—पीछे उन्हें मिलाता कीच ?

कितनों को पर करने व्याप्त
निपट आलसी जीवन देता,
कोई उनकी खबर न लेता,
होने देता गिरते-पड़ते उन्हें नाश को प्राप्त।

आशाओं का होना चूर्ण,
आशाओं का ही मत होना,
दोनों में है सुख को खोना,
सुखदायी तो आशाओं का होना—होना पूर्ण।

इन आशावालों को छोड़,
जो दुनिया में केवल थोड़े,
तुझे चाहिए आँखें मोड़े,
साधारण जीवन में जग में जहाँ मची है होड़।

जग में कितने ऐसे लोग
उद्यम-वृत्ति रहित जो रहते
कटे किसी विधि जीवन कहते,
इतने जाते ऊब जगत के दुख का करते भोग।

देखो जग का और अनर्थ,
मानव कितने काम उठाते,
स्वेद बहाते, शीश खपाते,
कोई शक्ति यत्न सब उनका पर कर देती व्यर्थ!

जैसे मर-खप बच्चे ढेर
मिट्टी के सड़कों पर लाते,
आँगन, बैठक, बाग बनाते,
मोटर आती—उन्हें मिटाते उसे न लगती देर!

जग के कैसे उल्टे काम!
यश करते सिर अपयश आता,
करते होम हाथ जल जाता,
कितने अच्छे होने में सयत्न होते बदनाम!

दुनिया के उजड़े उद्यान,
शीतलता, छाया पहुँचाते
जो तरु वे ही काटे जाते,
खड़े सुखाए कितने जाते। कौन पाप? अनजान!

कितनों के दुख दीर्घ अथाह
रोग, जरा, घटना से आते,
व्यथित, गलित, पीड़ित कर जाते,
कितनों के पर पास न कोई करने को परवाह।

कितने हैं ऐसे, हा शोक!
भोजन-वस्त्र जिन्हें मिल पाए,
स्वर्ग भूमि उनको बन जाए,
वे भी जब दुःखित, कैसे मैं अश्रु सकूँ निज रोक!

जग के इस क्रंदन-आलाप
में न भूल तुम जाना, प्राण!
उन दुखियों का दुःख महान,
सूखा जिनका गला, चुप रहे, कठिन दुःख के ताप!

जग के दुःखों का अनुमान
करते मानव-बुद्धि सिहरती,
कहे कल्पना डरती-डरती,
एक-एक निर्बल जीवन पर लाखों दुःख महान!

कभी-कभी जग-क्रंदन चीर
हास्य-शब्द कानों में आते,
सुख-दुख का अंतर दिखलाते,
करते जग के आर्तनाद को और अधिक गंभीर!

जगती-तल का क्रंदन-त्रास
मैं हूँ प्रतिक्षण सुनता रहता,
लगता सबके दुख में सहता,
भारी रहता हृदय इसी से रहता सदा उदास।

कान मूँद लो, कोमल प्राण!
तुम न आँख से नीर बहाओ,
तुम न हृदय निःश्वास उठाओ,
तुम पहले-सी ही मुसकाओ,
व्यर्थ कराया मैंने तुमको इस रोदन का ज्ञान!

हाय नियति का क्रूर विधान !
तूने मुझको खूब डुबोया,
जग-दुख इससे क्यों न भिगोया,
अपने ही हाथों से खोया,
जीवन-अंधकार-घन, इसकी जो विद्युत-मुसकान !

सजीव कविता

आज बहुत मचली हो, प्राण !
'मुझे छंद के नियम सिखाओ,
कविता करना मुझे सिखाओ,
मुझे बताओ सत भावों का सत शब्दों में गान।'

भावुकता की प्रतिमे, प्राण !
साधारण भावों से दूर
तू, जिनसे कविता भरपूर,
हो सकता ऐसे ही भावों का कविता में गान !

भाव बहुत, पर, ऐसे, प्राण !
जा न सकें अधरों पर लाए,
कभी नहीं मैंने लिख पाए,
मेरे जीवन के जो होते सब से भावुक गान !

ऐसे भावों की तू खान;
काम न तेरा कविता करना,
किंतु भावना मुझमें भरना,
कवि करने वाली तू है कविता सजीव, हे प्राण!

पागल

आज बहुत मैं रोया, प्राण!
आहें तप्त हृदय से उठकर
आईं बहुत बार अधरों पर,
सुना कहा करती हो मुझको तुम पागल-नादान।

जब तक मुझको सब संसार
कहता था पागल-दीवाना,
था न बुरा कुछ मैंने माना,
किंतु तुम्हारा ऐसा कहना मुझको दुखद अपार।

प्राण, तुम्हारा यही विचार,
जो मैं तव मुख-शशि की ओर
रहा देखता नयन-चकोर,
रात-रात, दिन-दिन वह था पागलपन का व्यवहार!

लाखों बार तुम्हारे द्वार
दौड़-दौड़कर जब मैं आया,
प्रिय नामों से तुम्हें बुलाया,
तुम समझीं मेरे ऊपर थी विक्षिप्तता सवार!

जब-जब तव मृदु पद मैं थाम
मचला उसका चुंबन करने,
उसकी रज पलकों पर धरने
तुम समझीं क्या बुद्धि हमारी कर न रही थी काम!

प्राण, तुम्हारा क्या अनुमान,
दिए तुम्हें उपहार बराबर,
अपने को कर दिया निछावर,
अपना सौरभ-प्रेम लुटाया तुमपर बस अनजान!

बिल्कुल ऐसी बात न, प्राण!
चरणों में रख हृदय दिया है
मैंने अपना, और किया है
सभी प्रणय-व्यवहार जानकर, जान-जानकर, जान!

जिह्वा से जो छूटा बाण
नहीं लौटकर फिर वह आता,
कोई कितनी बात बनाता,
उसके जाने देने में ही संभव अब कल्याण!

मन में उठकर एक विचार
धीरज है कुछ मुझको देता,
है कुछ मेरा दुख हर लेता,
तुमसे पागल कहलाने में ही मेरा निस्तार!

जब अनुचित बातें एकाध
होतीं, क्षमा माँगने आता,
विविध रीति से तुम्हें मनाता,
पर तुम करके तंग क्षमा करतीं मेरा अपराध!

कहीं न हो अपराध असाध्य
मुझसे, डरता रहता इससे,
क्रुद्ध बहुत हो मुझपर जिससे,
सदा के लिए मुझे छोड़ने को हो जाओ बाध्य।

तुमने कहकर, पागल, प्राण !
मेरा संकट बहुत हटाया,
व्याकुलता से मुझे बचाया,
एक बड़े खटके से मेरी छूट गई अब जान ।

पागल को अपने व्यवहार
पर उत्तरदायी ठहराता
कौन ? उसे है दोष लगाता
कौन ? किसे है क्रोधित करता पागल का आचार !

कभी-कभी यदि मैं दो चार
करूँ धृष्टता, मेरे ऊपर
अब न साधना मौन क्रोधकर,
कर देना सब क्षमा समझकर पागल का व्यवहार ।

तितली

आज हुआ मैं निर्दय, प्राण !
रवि ने जब निज तेज हटाया,
अंधकार कमरे में छाया,
लंप जलाया मैंने दीपक-बेला आई जान ।

मेरी खिड़की के उस पार
पीपल का है सुंदर तरुवर,
जिसकी डालें फैल-फैलकर
पहुँच गई हैं मेरे कमरे की खिड़की के द्वार।

रजत-पंख तितली सुकुमार
बैठी एक हरे पत्ते पर
थी, जिसपर पत्तों से छनकर
अस्तासन्न स्वर्ण - रवि - किरणें पड़ती थीं दो-चार।

चंचल होकर पवन सक्रोध
तितली का था पंख उड़ाता,
मानो उससे सहा न जाता,
देखे तितली को बैठी लिपटी पत्ते की गोद।

त्यागी प्रेमी रवि कर - हाथ
बढ़ा बलाएँ मानो लेता,
बारंबार दुआएँ देता,
कहीं भी रहे मेरी तितली रहे सुखों के साथ!

अपलक नयनों से अविराम
विविध कल्पनाएँ मन करता,
विविध भावनाएँ मन भरता,
रहा देखता दृश्य यही सब दूर हटाकर काम।

ज्यों ही हुआ प्रकाश - प्रसार
कमरे में, तितली उड़ आई
खिड़की से भीतर, मँडराई
चारों ओर लंप की चिमनी के वह बारंबार।

एक भविष्य अनिष्ट विचार
लगा मुझे अब आकुल करने,
चिंता से मन मेरा भरने,
पीपल के पत्तों-सा काँपा मेरा मन सुकुमार।

मन में आया ध्यान तुरंत,
लंप ज़रा मैं धीमा कर दूँ,
प्राण बचा मैं तितली का लूँ,
आह न मुझसे तो देखा जाएगा इसका अंत।

झलक उठा मन में आनंद
धीरे से बस पेच घुमाई,
बत्ती नीचे को खिसकाई,
तेज़ लंप की ज्योति हो गई पल भर में अति मंद।

तितली के दुख का अनुमान
नहीं लगा सकता मैं उसपर,
गिरी मेज़ पर पंख उलटकर
तलफी, तलफी, तड़पी, खिसली, उड़-उड़ गिरी अजान!

होता था प्रतीत दुख-भार
उसका, इतना हुआ विचार—
सुखमय होगा बार हज़ार
तड़प-तड़प मरने से उसका जलकर होना छार!

निर्दय सदय हुआ तब, प्राण!
पत्थर-का-सा हृदय बनाया,
कंपित कर से लंप बढ़ाया,
तितली के शरीर में आई मानों फिर से जान!

पंख प्रफुल्ल सीध में तान
उड़ी लंप के मुँह पर आई,
चिमनी के मुँह वेग समाई,
भय था उसको मानो फिर से ज्योति न हो लयमान।

हृदय पकड़ कर खींची आह!
चिमनी में दी लपट दिखाई,
पर भर भी वह ठहर न पाई,
चिमनी के मुँह पर फिर देखा होते धूम्र - प्रवाह!

लिखते यह दो प्रश्न महान—
'पवन गोद में जिसको लेता,
सूर्य दुआएँ जिसको देता,
क्षुद्र लंप के ऊपर आई क्यों होने बलिदान?

क्यों जल करके जीवन - हीन
तितली ने हो जाना चाहा?
कुछ न प्रेम-सुख पाना चाहा!'
धूम्र हो गया चकित मुझे कर पल में शून्य - विलीन।

जग में है सौंदर्य अमान,
पर मुझको तो तू ही भाती,
तू ही मेरा हृदय चुराती,
तू ही मेरे लिए जगत सुषमा का केन्द्र स्थान !

चुंबन - मिलन सुखों के धाम,
सुखी न पर इतना होऊँगा,
कभी न जितना, जब खोऊँगा
तेरे चरणों में अपने को बन रजकण निष्काम !

प्रेम

पूछ रही हो बारंबार—
'सबसे अधिक प्रेम है तुझको
किससे ? और बतादे मुझको
मेरे लिए हृदय के अंदर तेरे कितना प्यार ?'

प्रश्न तुम्हारा ठीक न, प्राण !
नहीं प्रेम का लगता मोल,
नहीं प्रेम की होती तोल,
अचरज है मुझको तू अब तक इसको सकी न जान ।

रखते सभी विशेषस्थान
जितने प्रेम - पात्र हैं मेरे,
अथवा हों जितने भी तेरे;
एक दूसरे से उनका संतोलन हो सकता न।

अधिक, न्यून करना निर्धार
नहीं प्रेम में सह सकता हूँ,
केवल इतना कह सकता हूँ—
नहीं किसी को वैसा करता जैसा तुमको प्यार।

झूला

सावन का अब आया मास,
पानी है अब रोज़ बरसता,
फैली है हर ओर सरसता,
देख - देख हरियाली बालाओं के मन उल्लास।

तन में, मन में भरे हुलास;
हरे रंग की साड़ी पहने,
पहने फूल - कली के गहने,
रोज़ झूलतीं, गातीं कजली, गातीं बारामास।

आज कड़ी में झूला डाल
बार - बार तुम मुझे बुलाओ—
'आओ ज़रा झूल तो जाओ'
आऊँगा यदि नहीं, तुम्हें क्या होगा बड़ा मलाल ?

इच्छा मेरी प्रबल नितांत
सदा झूलते ही रहने की—
क्षमा धृष्टता हो कहने की—
पर इस तुच्छ झूलने पर हो वह न रुकेगी शांत।

इच्छा - तारक में प्रत्येक
झूलूँ उसकी आभा बनकर,
झूलूँ चलता प्रकृति नियम पर
अंतरिक्ष में बनकर गोलक या ब्रह्मांड अनेक।

शशि-कर का बन कोमल तार
झूलूँ मंद शयित पृथ्वी पर,
लेकिन झूलूँ केवल बनकर,
उदय-अस्त होते सूरज की किरणें अति सुकुमार।

जब हो बादलमय आकाश,
देख रहा हो रवि जलवर्षण,
झूलूँ तब मैं इंद्रधनुष बन;
नभ-सुर-सरिता बन तब जब हो निर्मल नीलाकाश।

पवन पंख का ले आधार
तब मैं झूलूँ बादल बन-बन,
जब यह मेरा थक जाए तन,
लंबी-लंबी पेंगें भरते बन-बनकर नीहार।

नभस्तब्धता करता नाश,
घन मंडल के नीचे ऊपर,
झूलूँ मैं कड़कध्वनि होकर,
झूल पकड़कर दामिनि का अंचल बन चपल प्रकाश।

लहरों पर मैं बनकर मीन,
नदियों पर लहरें मैं बनकर,
नदियाँ बनकर मैं कूलों पर,
मत्त धार बन क्षुब्ध उदधि में झूलूँ मैं स्वाधीन।

पंकज पर बन मधुकर माल,
ओस बिंदु बन पंकज-दल पर,
कमल-नाल तालों में बनकर,
झूलूँ मैं लहरों पर सीधे-उलटे बना मराल।

बनकर पंखुरियाँ सुकुमार
फूलों पर, बन फूल डाल पर,
शाखाएँ वृक्षों में बनकर
मैं नित झूलूँ बिठा गोद में गाते विहग हजार।

दूल्हे से जो भूधर शांत,
हिमधारा का सेहरा बनकर
झूलूँ मैं उनके आनन पर,
ब्याह-गीत प्रतिध्वनि-सी झूलूँ घाटी में एकांत।

पटुके-सा बन निर्झर श्वेत
झूलूँ गले लिपट भूधर के,
घने वृक्ष में रूप चँवर के
हिलूँ, डुलूँ, झूलूँ भूधर के चारों ओर अचेत।

चले पवन जब वेग महान,
तब झूलूँ मैं कानन बनकर
भूतल के कंपित पटरे पर;
मृगतृष्णा बनकर मैं झूलूँ बालू के मैदान।

कुंठित दलित, संकटापन्न
के मन में झूलूँ धीरज हो,
गाऊँ गीत दुःख जाए खो;
वृद्ध भिखारी की झोली में झूलूँ बनकर अन्न।

जेब अफटे औ' अश्वेत
में दीनों के बनकर पैसे,
झूलूँ खूब सँभल कर ऐसे,
गिरूँ न, बाल पकी बन झूलूँ दीन कृषक के खेत।

बन करुणा सबके उर, प्राण!
सदा झूलना कभी न भूलूँ,
बनकर कृपा सभी तन झूलूँ,
धनिकों की मुट्ठी में झूलूँ बन दीनों को दान।

पथ दिखलाने वाली कांति
भूलूँ अंधी आँखों में बन;
दुखित जिन्हें करता जगच्चिंतन
उनके हृदयों में भूलूँ मैं बनकर सुखकर शांति।

जिनके मुख रहते चिर म्लान,
हास्य मधुर बन उनके मुख पर
भूलूँ मैं दिन-रात निरंतर;
बच्चों का कलोल बन भूलूँ गृह में निःसंतान।

बहते जो नैराश्य प्रवाह,
उनके मन में मैं आशा हो,
ऐसी कभी न जाए जो खो,
भूलूँ, उन्नतिशील हृदय में, बनकर नव उत्साह।

भूलूँ पापी मन में, प्राण!
पछतावा ऐसा बनकर जो,
पाप रोकने में समर्थ हो,
पतनशील मन में बन भूलूँ साहस, बल, सम्मान।

शब्द जिन्हें सुन होते कान
अति हर्षित, मैं प्रतिक्षण बनकर
झूलूँ सबके ही कंठों पर,
राग-रागिनी बनकर झूलूँ मैं गायक के गान।

देशभक्त के उर में नित्य
मातृभूमि की बनकर ममता,
भ्रातृभाव, आज़ादी, समता,
झूलूँ, गाता गीतों में सब उनके उज्ज्वल कृत्य।

शिशु के होठों पर अनजान,
सरल हँसी झूलूँ मैं बनकर,
नव अनुराग युवक हृत्पट पर,
युवती के अधरों पर, बनकर मैं मादक मुसकान।

शुद्ध स्नेह का वह उन्माद,
स्वार्थ वासना रहित सदा जो,
झूलूँ प्रेमी के मन में हो,
विरही के मन में झूलूँ बनकर प्रेमी की याद।

शिशुओं की हो जैसी बात,
निर्मल और सरल अनजान,
स्वाभाविक, स्वर्गिक, अम्लान,
सदा स्वतंत्र, मधुर, सुकुमार
सदा भरा हो जिसमें प्यार,
उड़ती नभ में हो लेकिन हो
इतनी नम्र-विनीत सके जो
अपने सारे अपनेपन को
रज के कण में निर्विलंब खो,
कवि के हृदय भावना ऐसी बन झूलूँ दिन-रात।

मेरी अभिलाषा की पूर्ति
झूल न इतना भी हो पाए
जब, तब तेरा ध्यान लगाए,
अपने मन-मंदिर में झूलूँ बनकर तेरी मूर्ति।

साँस उठे जब मेरी फूल
बहुत झूलने से, तब आऊँ
पास तुम्हारे, श्रांति मिटाऊँ
धीमे-धीमे, प्राण, तुम्हारे हृदय - पालने झूल।

काव्य अप्रकाशन

कवि, तू अपना सुंदर गान
पत्रों में क्यों नहीं छपाता ?
रसिकों में क्यों नहीं सुनाता ?
क्या न लालसा तेरी जग में पाने की सम्मान ?

सुषमा के प्रति यह अन्याय—
उसे छिपाकर जो तू रखता,
केवल तू उसका रस चखता,
वंचित रखता जग को, उसकी करता हत्या, हाय !

यश की हो न तुझे परवाह,
किंतु अमरता का अधिकार
मिला जिसे, हों क्यों वह क्षार
तेरे साथ अपूरित अरमानों की भरती आह ?

कुछ न अमर जग—मेरा ध्यान,
जल्दी देर सभी का तो क्षय
इस दुनिया में होना निश्चय;
मरना दो दिन बाद, आज या, दोनों एक समान ।

मिलन कहाँ जीवन के पार
होने की है कुछ भी आशा ?
तब क्यों प्रिय न लगे अभिलाषा,
साथ - साथ उसके मरने की जिससे मेरा प्यार ?

प्यारे जीवन के जो राग
टूटे, फूटे, शुष्क, असार—
मुझे मधुर कोमल सुकुमार,
उनसे है अनुराग मुझे, उनको मुझसे अनुराग ।

छोड़ उन्हें जाऊँ संसार ?—
प्रश्न हृदय को कंपित करता,
कहता लंबी आहें भरता—
कौन करेगा बाद तुम्हारे उनको तुम - सा प्यार ?

मेरे जीवन का जो गान,
इससे तो अच्छा मिट जाए,
तभी मृत्यु जब मेरी आए,
मेरे पीछे हो उसकी दुरुपेक्षा या अपमान !

क्या केवल जग का भय मान,
अथवा डर कर नियति विधान,
गान छिपाऊँ ! है ऐसा न !
उसे गुप्त रखने का मेरा कारण और महान।

रजनी के अंचल मुँह डाल
मानव, पशु, पक्षी सो जाते,
तारक मणि से चौक सजाते,
देव विविध विधि नभ के श्यामल आँगन में सुविशाल।

चाँद-चाँदनी बाहें डाल
गले परस्पर नभ में आते
नभ - गंगा में पैठ नहाते,
कभी सम्मिलित गले पहनते ज्योतिर्मंडल-माल।

सकता कौन इसे पर जान !
अरुण-चूड़ जब तक में बोले,
बोले मानव आँखें खोले,
तरणि - तेज धारा में बहता छोड़ न एक निशान !

भू के छोटे-छोटे ग्राम
कभी-कभी सुंदरतम वाला
का दिखलाते रूप निराला,
देव - बालिकाएँ हो जातीं बलि जिनपर निष्काम !

उनका अनुपम रूप ललाम,
किसी-किसी से देखा जाता,
उनका कोई चित्र न पाता,
सौंदर्य - तुलना में मिलता उन्हें न कभी इनाम।

घर उन्हें रखतीं दीवार
चार, उसी में जीवन करतीं
व्यतीत, उसी में घुल-घुल मरतीं,
सदा के लिए भू में गड़तीं या हो जातीं चार।

वृक्ष किसी सरिता के कूल—
निर्जन, स्निग्ध और अति शांत,
एक विहंग बैठ एकांत,
गाता कभी-कभी उस तरु पर चढ़ी लता में भूल।

उसके गाने में है लोच
इतना, और मधुर इतना स्वर
करते जिस पर एक निछावर
सब मानव संगीत किसी को हो न सके संकोच।

भूमि से परे उसके गान
का न 'रिकार्ड' लिया पर जाता,
उसे न कोई है सुन पाता,
सदा के लिए अंतरिक्ष में हो जाता लयमान!

काश्मीर की घाटी शीर्ण
जहाँ मनुष्यों की आँखें, पग
नहीं बना पाए अब तक मग
प्रकृति सुगंधित सुमन बहुत से करती नित्य विकीर्ण।

सौरभ नैसर्गिक - भरपूर!
इत्र नहीं उसका बन पाता,
कोई जिसको हृदय लगाता,
उड़ता—हल्का होता—मिटता पवन संग जा दूर!

बेलि - वृक्ष - आवेष्टित ताल
दुर्गम, गहन विपिन के भीतर,
खिलता कमल अकेला जल पर,
भय कंपित प्रतिबिंब सुकोमल अपना जल में डाल।

पाता उसे न कोई देख
नहीं भृंग ऊपर मँडराते,
हंस न क्रीड़ा करने आते,
करता चित्रकार उसकी सुषमा का कभी न लेख।

जीवन में रहता अनजान,
ग्रीष्म अग्नि किरणें जब लाता,
सूख सरोवर है जब जाता,
जलकर होता क्षार इस तरह जैसे जग में था न।

सुषमा, मेरा है अनुमान
चाही जाने को न सँवरती,
आत्मतृप्ति में सुख सब करती,
निजानंद में सब सुख भरती,
कभी न हर्ष अधिक से मरती
जब वह मरती अनदेखी, अनसुनी और अनजान!

प्यारी मुझे पंक्तियाँ चार
सुखी मृत्यु ऐसी ही पाएँ,
हानि कौन है यदि मिट जाएँ,
मेरे अंत समय पर मेरे अधरों पर सुकुमार!

किसका किसके प्रति अपकार?
मुझसे अलग न मेरा गान,
वह सौरभ, मैं पुष्प समान,
टूट न पाए इस लगाव का कभी सुकोमल तार!

अरमान

आज तुम्हें क्या सूझी, प्राण?
करते-करते चयन कलि कुसुम
रँगी तितलियों के पीछे तुम
लगीं दौड़ने बार-बार हो चंचल बाल समान।

मेरी मधुर कुसुम-सी, प्राण
देख तितलियों पर यह तेरी
उत्सुक दौड़, लगाना फेरी,
'कभी फूल भी तितली पर उड़ते'!—गाया मैं जान।

पास तुम्हारे आता, प्राण !
मैं ही सदा, किंतु अरमान
रहता सदा हृदय में, प्राण !
तुम भी आतीं कभी हमारे पास ! अहा, सुख क्या न ?

आज मुझे होता विश्वास—
न रहेगा अरमान अपूर्ण,
हुए अनेक जिस तरह चूर्ण,
अपने आप कभी तुम भी आओगी मेरे पास।

बाहुपाश

छुड़ा मत भुजपाशों से, प्राण !
सुकोमल बच्चों के-से हाथ,
कड़ाई कर मत इनके साथ,
दीर्घ प्रतीक्षित मिले खिलौने के तू, प्राण, समान।

छुड़ा मत भुजपाशों से, प्राण !
नए मक्खन-सा कोमल तन,
दूध मे धोया-सा है मन,
निश्छलता से प्राप्त हुए मधु के हैं वचन समान।

छुड़ा मत भुजपाशों से, प्राण !
कँपाता मेरा सारा गात्र,
हृदय का भरता सीमित पात्र,
निकल तुम्हारे अधरों से सुख-रस का स्रोत महान।

छुड़ा मत भुजपाशों से, प्राण !
ठहरना तुझको है क्षण मात्र,
छिन्न होता ही है अब पात्र,
अपने आप खुल पड़ेंगे ये बाहुपाश अनजान।

ईश्वर और प्रेम

मैंने कर जब सतत विचार
कारण कई दार्शनिक पाया,
ईश्वर से विश्वास हटाया,
किए कवि-हृदय ने भी मेरे कारण कुछ सुकुमार।

माता-पिता सनातन धर्म
के हैं परम सरल अनुयायी,
उनसे मैंने शिक्षा पाई
प्रथम धर्म की, उनसे सीखा पहले ईश्वर मर्म।

बड़े-बड़े जो ले उपहार
मंदिर की प्रतिमा को जाता,
जितना ही जो द्रव्य चढ़ाता,
उतना ही उससे खुश होता ईश्वर, करता प्यार।

बड़े-बड़े करता संकल्प,
बड़े बड़े जो यज्ञ कराता,
बड़े पुण्य-दानों का दाता
जो, कर पाता खुश ईश्वर को बहुत, अल्प जो अल्प।

ऐसे ईश्वर के दरबार
में कुछ चीज़ें पहुँचाने को,
या लेकर के कुछ जाने को,
मना मुझे करता था मेरा सदा हृदय सुकुमार।

करे न छोटा-बड़ा विचार
जब उपहार हमारा पाए,
बालक-सा जो खुश हो जाए,
मेरी इच्छा होती उसको देने को उपहार।

छोड़ा मैंने जब गृह, द्वार,
और बाहरी जग में आया,
महा शोक ने हृदय दबाया
मेरा, देखा मैंने जब दुनिया का यह व्यवहार।

स्वर्ग हो रहा था नीलाम,
खड़े कबाड़ी पुलपिट, मिंबर,
वेदी डींगें मार-मारकर
अपनी-अपनी, बेच रहे थे उसे हृदय के दाम।

खड़ा हुआ मैं एक स्थान
पर था सुनता बड़ी देर तक
बात एक, था तर्क समर्थक
जिसका—ईश्वर न्यायी है वैज्ञानिक तुला समान।

लेता तोल हमारे भाव,
कर्म सभी जो कुछ करते हम,
देता अधिक न उससे या कम,
इस ईश्वर की ओर हो सका मेरा नहीं खिंचाव।

हृदयहीन, संकुचित महान,
तोल प्रेम को करने वाला;
कर्मों को गिन धरने वाला,
हृदय हमारा जीत न पाया, अरे, वणिक भगवान।

जग के और-और भगवान
यद्यपि हैं वे बड़े उदार,
देते खोल स्वर्ग का द्वार
अपने प्रेमी को, जो करते इनको हृदय प्रदान।

कितना ही हो स्वर्ग महान,
प्रेम बड़ा है उससे जितना,
शब्द नहीं कह सकते उतना,
उसे प्रेम के बदले देना, उसका है अपमान।

प्रेम नहीं है वह जो प्रेम
स्वर्ग-सी बड़ी वस्तु के लिए
भी है वेश प्रेम का किए,
सच्चा प्रेम हुआ करता है बस करने को प्रेम।

ढूँढ थका ऐसा भगवान—
न तो प्रेम की तोल कराए
और न उसका दाम लगाए,
प्रेम हमारा पाकर कह दे 'स्वीकृत' एक ज़बान।

मंदिर बैठ लगाया ध्यान,
डाला अखिल प्रकृति को छान,
ढूँढा अंतरिक्ष सुनसान,
पर न शब्द ये चार प्यार के पड़े हमारे कान।

तभी मिली थी तू हे, प्राण!
स्वीकृत मेरा प्यार किया था,
कभी न हृदय विचार किया था,
उसे तोलने का—तत्क्षण मिल गए मुझे भगवान।

प्यार के लिए तुझसे प्यार,
स्वर्ग-नरक चाहे ले जाए,
चाहे शून्य विलीन कराए,
बदल न पाएगा आजीवन मेरा यह व्यवहार।

प्रेम अमूल्य—हमारी बात
यह मन में है रखनी तुमको,
नहीं प्रेम के बदले मुझको
देकर कुछ भी इस कोमल उर पर करना आघात!

नहीं प्यार के बदले प्यार
भी पाने की इच्छा मेरी,
(करती प्रेम कृपा यह तेरी)
इच्छा केवल, प्रेम न मेरा कर तू अस्वीकार!

देना प्रेम प्रेम को माँग!
लेन देन का भाव जहाँ है
हृदय यहीं तो हाट कहाँ है!
प्रेम प्रेम के बदले मुझको वेश्यापन का स्वाँग!

यह आदर्श प्रेम का मान,
कभी न चल सकता था उसपर
मैं ईश्वर से स्नेह लगाकर,
इस कारण मनुष्य में मैंने ढूँढ लिया भगवान!

रक्षाबंधन

गद्‌गद हृदय हमारा आज,
पुलकित देह हुई है मेरी,
बहना, रक्षा पाकर तेरी,
भेजा तूने जिसे गुलाबी पंखुड़ियों में आज।

दुःख गया हूँ बिल्कुल भूल
मैं इस समय सभी जीवन के,
विस्मय होता अंदर मन के,
मेरे कंटक जीवन में खिल पड़ा कहाँ से फूल !

खादी के ले लेकर तार
भिन्न-भिन्न रंगों में रंग,
बाँध सितारा सहित उमंग
एक बीच में, भेजा तूने भरकर उसमें प्यार।

अहा, ज्योति-सा निर्मल प्यार !
शुभाशीष के शब्द अनेक,
रंग सुनाता है प्रत्येक,
होता जो प्रविष्ट मानस में नयन-कर्ण के द्वार।

शुद्ध भावनाएँ दे श्वेत,
लाल हृदय में साहस लाए,
हरा आश-संदेश सुनाए,
रंग केशरी वीर भाव से भर दे हृदय निकेत!

स्नेह-बहन मेरी सुकुमार!
मंगल भेंट तुम्हारी पाकर
हृदय हमारा आया है भर
इतना, धन्यवाद के मुख से शब्द न आते चार!

नीर भरे नयनों से शीश
झुकता जाता आगे तेरे
और हृदय में उठतीं मेरे
तेरे लिए अमित शुभ इच्छाएँ, अगणित आशीष।

देख जगत का समर महान
हत आहत हो जब घबराऊँ,
हृदय पलायन-इच्छा लाऊँ,
रक्षा के तागे बन रोकें मुझे आत्मसंमान।

शीश झुके जब तलक शरीर
में हो प्राण शत्रु के आगे
यदि, तो मुझसे कौन अभागे ?
किस मुँह से तुझसे कहलाऊँगा फिर 'भाई वीर ?'

जीवन सरिता करते पार
थक जाए जब हाथ हमारा,
डूब जाय साहस बल सारा,
बनकर कूल प्रकट हों तेरी रक्षा के तब तार।

जीवन का पथ पड़े न देख
जब विपत्तियों के कानन में,
हो नैराश्य भयातुर मन में,
चमक पड़ें रक्षा के तागे बन पग-डंडी-रेख।

शरणस्थल जब हो न समीप,
शोक-निशा आकर छा जाए,
पद पग-पग पर ठोकर खाए,
तारा बन जाए रक्षा का मार्ग-प्रदर्शक दीप।

चलने को जब हों तैयार
पद मेरे अनीति के पथ पर,
चरणों से तब लिपट-लिपट कर
बन जाएँ लोहे की साँकल इस रक्षा के तार।

नियति-न्याय से हो लाचार
पाप गर्त में यदि पड़ जाऊँ,
कीच-कालिमा में गड़ जाऊँ,
मुझे उठालें ऊपर तेरी रक्षा के ये तार।

और अगर जीवन का खेल
कभी खेलते अवसर आए,
अनबन जब हममें हो जाए,
हो जाएँ हम अलग, करें हम आपस में अनमेल,

रक्षाबंधन का त्योहार,
तुझको याद दिलाए मेरी,
शुभ रक्षा मैं पाऊँ तेरी,
तुझे-मुझे फिर साथ जोड़ दे जिसका पावन तार।

जेल में रक्षाबंधन

रक्षाबंधन का दिन जान
बहिन, जेल तक थी तू आई,
सुना सजाकर थी तू लाई
एक थाल में रक्षा, अक्षत, पुष्प आदि सामान।

भर दिल में कितने अरमान
बहिन, यहाँ तू होगी आई,
किंतु, आह, तुझको मिल पाई
रक्षा मुझे बिन्हा देने की जेलर की आज्ञा न!

होगा जेलर बहिन-विहीन,
बहिनों का यदि स्नेह जानता,
रक्षाबंधन की महानता
अगर समझता, लौटा देता ऐसे तुझे कभी न।

आह, विदेशी के अधिकार
में था जेल, भला वह कैसे
पाता जान हमारे जैसे
भाई और बहिन के होते नाते अति सुकुमार।

बहुत विदेशों के आख्यान
और गान मैंने पढ़ डाले,
बहिन - बंधु संबंध निराले
का पर पाया कहीं न होते मैंने यह सम्मान,

जिनसे भरे हमारे गीत
गाँव - गाँव में जाते गाए,
सुन रोमांच जिन्हें हो जाए,
तुम सजीव बहिनों को देखे जिसको हो न प्रतीति।

सुना तुझे था शोक अपार
उस दिन हुआ, न तू दे पाई
प्यार भरी रक्षा सुखदाई
अपनी मुझको, जब तू होकर लौट गई लाचार।

व्यर्थ किया था शोक अपार,
वर्ष - वर्ष भर रक्षा देती,
धन्यवाद थी मेरा लेती,
मेरे लिए रोज़ अब रक्षाबंधन का त्योहार।

हाथों में हथकड़ियाँ डाल
दी हैं, बहिन, शत्रु ने मेरे,
जहाँ बँधा करते थे तेरे
रक्षाबंधन के दिन तागे हरे, केशरी, लाल।

क्या उनका लगता है भार
कभी नहीं, सच, बहिन, मानना,
रहती है नित यही भावना—
मानो हैं सप्रेम लिपटे तेरी रक्षा के तार।

धन्यवाद नित बारंबार
मुँह से मेरे निकला करता,
देश भक्ति की यह तत्परता
सीखी थी तुझसे ही मैंने पा रक्षा के तार।

मिले हर समय तेरा प्यार,
प्यार समुद्र पार कर पाता,
उच्च पर्वतों पर चढ़ जाता,
प्यार तुम्हारा रोक सकेंगी जेलों की दीवार!

तेरा प्यार

तेरा प्यार अनंत अपार;
था तन मेरा नभ यह सारा,
बादल - सा था हृदय हमारा,
बनकर ज्योति भरा था उसमें, प्राण, तुम्हारा प्यार।

समा न सका तुम्हारा प्यार
जब मेरे इस हृदय संकुचित
विद्युत में तब हो परिस्फुटित
बिखर पड़ा जगती के श्यामल अंचल पर सुकुमार।

एक तुझे ही सब संसार
में था देखा करता मैं तब,
एक विश्व देखूँ तुझ में अब,
तुझे प्यार कर सीखा मैंने करना जग को प्यार।

कलंक

संगिनि, मेरा - तेरा प्यार,
सुंदर शिशु - सा जिसको ढककर
रक्खा करता, पड़े न उसपर
नजर विश्व की, उसको कैसे जान गया संसार।

संगिनि, मेरा - तेरा प्यार,
पावन जो जैसे गंगाजल,
दुग्ध - धार - सा है जो निर्मल,
हाय, विश्व में कहलाता है अब वह पापाचार।

रहें सदा हम - तुम अज्ञात—
यही लालसा प्यारी मेरी
थी, पर चर्चा होती तेरी—
मेरी अब तो, जगह - जगह पर मेरी - तेरी बात।

संगिनि, मेरे तेरे प्यार
की तुलना हो पाए जिससे,
और जाँच की जाए जिससे,
किस जगह कसौटी, बाट, तुला संसार ?

स्नेह नहीं होता निष्काम—
यही संकुचित विश्व मानता,
हमें कालिमा-पूर्ण जानता,
देख कालिमामय नयनों से करता है बदनाम।

'करते हो क्यों नहीं विरोध ?'
भोली प्राण, करूँ ऐसा जो,
जाएँगी शंकाएँ दृढ़ हो
और विश्व की, पर कलंक का हो न सकेगा शोध !

मिले न मुझको बाहु विशाल
जिससे जग का वार बचाऊँ,
बली विश्व के आगे आऊँ
लड़ने को, जिनसे मैं अपनी ठोंक-ठोंक कर ताल।

जब-जब हुए जगत के वार
मुझ पर अपना शीश झुकाया,
सही मार पर कर न उठाया,
मार थका जब जग, छोड़ा उसने होकर लाचार।

नहीं आज पर मुझ पर मार;
हम-तुम रह न गए अब हम-तुम,
प्रेम डाल में लगे दो कुसुम,
आज प्यार के दो कोमल कुसुमों पर वज्र प्रहार।

हाय, प्यार प्यारा सुकुमार,
जिसने मुझसे तुझे मिलाया,
जिसने अब तक मुझे जिलाया,
उस पर देखें हम होते अपमानों की बौछार।

दुनिया से पाने की न्याय
कभी नहीं है मुझको आशा,
बता रही है मुझे निराशा,
अब तो दुनिया से बचने का अंतिम एक उपाय।

होगा बड़ा हर्ज ही कौन,
शून्य सरीखे जीव अकिंचन
अश्रु बहा जिनका शवसिंचन
करने वाला नहीं, सदा के लिए बने यदि मौन

उसी तरह से नित्य प्रभात
होगा, वायु चलेगी वैसे,
काम प्रकृति के होंगे जैसे,
सदा हुआ करते थे बँधकर एक नियम अज्ञात।

उसी तरह आमोद-प्रमोद
सदा रहेंगे जग में होते,
सुख-दुख मानव पाते-खोते
सदा करेंगे खेल जगत की विविध भावना-गोद।

भूलेगा हमको संसार,
पूरा होगा ध्येय हमारा,
उतर कलंक जायगा सारा
प्रेम शीश से, हम दोनों के कारण जिसका भार।

इससे आओ कर विष पान
आपस में भुजहार पिन्हाएँ,
फिर चिर चुंबन में मिल जाएँ,
कर दें जीवन - द्वै-द्वीपों का साथ - साथ निर्वाण।

मृत्यु

अरी, न तू मुझसे भय मान!
तुझे किया संबोधित जब-जब,
जग के कवि मर्मज्ञों ने तब,
किया अनगिनत अपशब्दों से ही तेरा आह्वान—

नयन से रहित, हृदय विहीन
प्राण सभी का हरनेवाली,
दुख से सबको भरनेवाली
सदा भयंकर, क्रूर, निष्करुण, कुटिल महा भयपीन !

चित्रकार ने तेरा रूप
काला और कुरूप बनाया,
बड़े-बड़े पंजे दिखलाया,
दीर्घ दंत वाला मुख खींचा, उदर बिना-तह कूप !

कितने शब्द भरे अपमान
सदा बरसते तुझपर आए,
किंतु न तू मुझसे भय खाए,
कटु [illegible] [illegible] नहीं करूँगा मैं तेरा आह्वान !

सभी जिन्होंने जीवन-काल
में पाई कटुता जीवन से,
विस्मित पूछेंगे निज मन से—
किसने दिए विशेषण जीवन के ये तुझपर डाल !

तुझे कहूँ मैं करुणापीन,
शांति सभी में भरनेवाली,
दुःख सभी का हरनेवाली,
जग - शरीर बंदीगृह - बेड़ी से करती स्वाधीन।

एक बात से ही तू हीन,
अपयश तुझे दिलाती है जो,
इस लंबी - चौड़ी दुनिया को
एक साथ अपने में तूने कर न लिया जो लीन।

मेरे मन में भी अभिलाष
थी, मैं तेरा चित्र बनाऊँ,
जग को तेरा रूप दिखाऊँ
किया प्रयत्न बहुत पर मुझको होना पड़ा हताश।

रंगों का मैं नहीं प्रयोग
करता हूँ जब चित्र बनाता,
भाव - भावना हूँ दिखलाता,
जिसे आँख से नहीं हृदय से देखा करते लोग।

'निष्पक्षता' भाव से हाथ,
हृदय 'भाव सम' से रच देता,
यदि मैं तीन भाव पा लेता,
गोद सजा मैं तेरी देता 'अटल शांति' के साथ।

शांति विश्व में ढूँढा हार;
निष्पक्षता, पूर्ण समता का
भाव कहाँ मैं था सकता पा,
पक्षपात, असमान भावमय, द्वंद भरे संसार!

ऐसी दुनिया से बेज़ार
गया बहुत ही हूँ मैं अब हो,
सहन शक्ति अब गई सभी खो,
सीधी मधुर मृत्यु मुझको अब कर जीवन के पार।

बड़े प्यार से तुझे पुकार
पूछूँ एक प्रश्न तू सुन ले,
कुछ संतोषजनक उत्तर दे,
खोलेगी जीवन-तापों से बचने का कब द्वार?

पहनाने को जीवन हार
कुसुमों-सा मैं तुझे खिलूँगा,
प्रेमी-सा मैं तुझे मिलूँगा,
अपने लालायित हाथों को चौड़ा खूब पसार।

'भयप्रद होना मृत्यु-गृहीत,
रोम-रोम पर दंत चुभाती—
तू आती'—दुनिया डरवाती
तेरे तीक्ष्ण दंत से मैं हूँ किंतु नहीं भयभीत।

तू काटेगी कभी न ध्यान,
मेरे कोमल-कोमल तन पर
जीवन ने हैं घाव दिए कर
इतने, तुझे नए करने को कहाँ मिलेगा स्थान!

अरी, व्यर्थ में तू बदनाम,
जीवन ने काटा जी भरकर,
पीड़ा है अब दुस्सह-दुस्तर,
तेरा हरना प्राण करेगा मरहम का-सा काम!

करें और अपराध अनेक
अपयश औरों के सिर पड़ता,
नयनहीन जग की इस जड़ता
का तू मेरे आगे रखती बड़ा नमूना एक।

'करने वाली जीवन-अंत',
यह है नाम जगत में तेरा,
दृढ़ विश्वास किंतु यह मेरा,
मृत्यु जिसे जग कहता, जीवन का अंतिम विष दंत।

दुख का जिससे होता अंत,
मिलती गोद बाद को तेरी
आएगी बारी कब मेरी
उसमें सोने को पा निद्रा अक्षत और अनंत?

आत्म दीप

मुझे न अपने से कुछ प्यार!
मिट्टी का हूँ छोटा दीपक,
ज्योति चाहती दुनिया जब तक
मेरी, जल-जलकर मैं उसको देने को तैयार।

पर यदि मेरी लौ के आर
दुनिया की आँखों को निद्रित
चकाचौंध करते हों, छिद्रित,
मुझे बुझा दे बुझ जाने से मुझे नहीं इन्कार।

केवल इतना ले वह जान—
मिट्टी के दीपों के अंतर
मुझमें दिया प्रकृति ने है कर,
मैं सजीव दीपक हूँ, मुझमें भरा हुआ है मान।

पहले करले खूब विचार
तब वह मुझपर हाथ बढ़ाए,
कहीं न पीछे से पछताए,
बुझा मुझे फिर जला सकेगी नहीं दूसरी बार।

बच्चन की

अन्य प्रकाशित रचनाओं का विवरण

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

सतरंगिनी

(कवि की नवीनतम रचना)

यह कवि की १९४२-४४ में लिखित सौंदर्य, प्रेम और यौवन के ५० गीतों का संग्रह है। सौंदर्य, प्रेम और यौवन कवि के लिए नए विषय नहीं हैं। मधुशाला और मधुबाला की पंक्ति-पंक्ति में सौंदर्य की दुर्दम आसक्ति है, प्रेम की अमिट प्यास है और है यौवन का अनियंत्रित उन्माद। पर निशानिमंत्रण के अंधकार और एकांत संगीत के एकाकीपन से निकलकर जब कवि ने पुनः उन विषयों पर लेखनी उठाई है तब उसने केवल एक पिछले अनुभव को नहीं दुहराया। सौंदर्य पर मुग्ध होने वाली आँखों ने जीवन की बहुत कुछ असुंदरता भी देखी है, प्रेम के प्यासे हृदय ने उपेक्षा और घृणा का भी अनुभव किया है और उषा की मुसकान में नहाती हुई काया कितनी बार तिमिर के सागर में डूब-उतरा चुकी है।

मधुशाला और मधुबाला में जो सौंदर्य, प्रेम और यौवन है उसके आगे प्रश्न वाचक चिह्न लगा हुआ है। सतरंगिनी में उनके प्रति अडिग विश्वास है, वे अब केवल व्यक्ति की प्रेरणा मात्र न होकर विश्व जीवन की वह धुरी हैं जिनपर वह युग-युग से घूमता आया है और घूमता जायगा।

बच्चन ने जीवन की मान्यताओं को सहज में ही कभी स्वीकार नहीं किया। उनका यह परिणाम भी स्वानुभव का मूल्य देकर संचित किया गया है, पुस्तक पढ़कर देखिए।

संस्करण समाप्त हो रहा है। देर करने से आपको दूसरे संस्करण की बाट देखनी पड़ेगी।

आकुल अंतर

(दूसरा संस्करण)

यह कवि की १९४०-४२ में लिखित ७१ गीतों का संग्रह है। कवि को अपनी पिछली रचना 'एकांत संगीत' लिखते समय आभास हुआ था कि उसकी कई कविताएँ आंतरिक अशांति को व्यक्त न करके वाह्य विह्वलता को मुखरित करती हैं। इस कारण भविष्य में उन्होंने अपने गीतों को 'आकुल अंतर' और 'विकल विश्व' दो मालाओं में रखकर आंतरिक और वाह्य दोनों प्रकार की विक्षुब्धता को अलग अलग वाणी देने का निश्चय किया था। दोनों मालाओं के गीत इन तीन वर्षों में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। इस पुस्तक में कवि ने 'आकुल अंतर' माला के अंतर्गत लिखित ७१ गीतों को संगृहीत किया है।

'एकांत संगीत' से 'आकुल अंतर' में कितना परिवर्तन आया है, यह केवल इस बात से प्रकट हो जायगा कि 'एकांत संगीत' का अंतिम गीत था 'कितना अकेला आज मैं' और 'आकुल अंतर' का अंतिम गीत है 'तू एकाकी तो गुनहगार'। भावों की किन-किन अवस्थाओं से यह परिवर्तन आया है, इसे देखना हो तो 'आकुल अंतर' पढ़िए।

छंद और तुक के बंधनों से मुक्त केवल लय के आधार पर लिखे गए कुछ गीत हिंदी के लिए सर्वथा नवीन और सफल प्रयोग हैं।

दूसरा संस्करण खतम हो रहा है। अपनी प्रति शीघ्र मँगा लें।

एकांत संगीत

(तीसरा संस्करण)

यह कवि की १९३८-३९ में लिखित एक सौ गीतों का संग्रह है। देखने में यह गीत 'निशा निमंत्रण' के गीतों की शैली में प्रतीत होते हैं, परंतु पद, पंक्ति, तुक, मात्रा आदि में अनेक स्थानों पर स्वतंत्रता लेकर कवि ने इनकी एकरूपता में भी विभिन्नता उत्पन्न की है।

कवि ने जिस एकाकीपन का अनुभव निशा निमंत्रण में मुखरित किया था उसकी यहाँ चरम सीमा पहुँच गई है। 'कल्पित साथी' भी साथ में नहीं है। कवि के हृदय में वेदना इतनी घनीभूत हो गई है कि उसे बताने के लिए वातावरण की सहायता की भी आवश्यकता नहीं होती। गीतों का क्रम रचना-क्रम के अनुसार होने से कवि की भावनाओं का जैसा स्वाभाविक चित्र यहाँ आपको मिलेगा वैसा और किसी कृति में नहीं।

कवि ने जीवन के एकांत में क्या देखा, क्या अनुभव किया, क्या सोचा, यदि इसे जानना चाहते हैं तो एकांत संगीत को लेकर एकांत में बैठ जाइए। जीवन में एक स्थान पर प्रत्येक व्यक्ति एकाकी है। इन गीतों को पढ़ते हुए आप यही अनुभव करेंगे कि जैसे आपके ही जीवन के एकाकी क्षणों के चिंतन और मनन को कवि ने वाणी प्रदान कर दी है। बच्चन की यह विशेषता है कि वह व्यक्तिगत अनुभवों को कला के धरातल पर लाकर सार्वजनीन बना देते हैं।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

निशा निमंत्रण

(चौथा संस्करण)

यह कवि की १९३७-३८ में लिखित एक कहानी और एक सौ गीतों का संग्रह है। 'निशा निमंत्रण' के गीतों से बच्चन की कविता का एक नया युग आरंभ होता है। १३-१३ पंक्तियों में लिखे गए ये गीत विचारों की एकता, गठन और अपनी संपूर्णता में अंग्रेज़ी के सॉनेट्स की समता करते हैं।

'निशा निमंत्रण' के गीत सायंकाल से आरंभ होकर प्रातः-काल समाप्त होते हैं। रात्रि के अंधकारपूर्ण वातावरण से अपनी अनुभूतियों को रंजित कर बच्चन ने गीतों की जो शृंखला तैयार की है वह आधुनिक हिंदी कविता के लिए सर्वथा मौलिक वस्तु है। गीत एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि यह सौ गीतों का संग्रह न होकर सौ गीतों का एक महागीत है, शत दलों का एक शतदल है।

एक ओर तो इनमें प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण है दूसरी ओर हर प्राकृतिक दृश्य के साथ कवि की भावनाओं का ऐसा संबंध दिखाया गया है मानो कवि की भावनाएँ स्वयं उन प्राकृतिक दृश्यों में स्थूल रूप पा गई हैं। सूर्यास्त के साथ कवि की आशाएँ टूट गई हैं। रात के अंधकार में कवि का शोक छा गया है। प्रभात की अरुणिमा में भविष्य का संकेत कर कवि ने विदा ले ली है।

इसका सौंदर्य देखना हो तो शीघ्र ही अपनी प्रति मँगा लीजिए।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुकलश

(चौथा संस्करण)

यह कवि की १९३५-३६ में लिखित 'मधुकलश', 'कवि की वासना', 'कवि की निराशा', 'कवि का गीत', 'कवि का उपहास', 'लहरों का निमंत्रण', 'मेघदूत के प्रति' आदि कविताओं का संग्रह है।

आधुनिक समय में समालोचकों द्वारा बच्चन की कविताओं का जितना विरोध हुआ है संभवतः उतना और किसी कवि का नहीं हुआ। उन्होंने अपने विरोधियों की कटु आलोचनाओं का उत्तर कभी नहीं दिया परंतु उससे जो उनकी मानसिक प्रतिक्रिया हुई है उसे अवश्य काव्य में व्यक्त किया है। उत्तर प्रत्युत्तर में जो बात कटु हो जाती वही कविता में किस प्रकार मधुर हो गई है, 'मधुकलश' की अधिकांश कविताएँ इसका प्रमाण हैं। कवि ने चारों ओर के आक्रमण के बीच किन भावनाओं और विचारों से अपनी सत्ता को स्थिर रक्खा है उसे देखना हो तो आप 'मधुकलश' की कविताएँ पढ़िए। इनके अंदर साहित्य के आलोचकों को ही नहीं जीवन के आलोचकों को भी उत्तर है, कवि के लिए ही नहीं मानवता के लिए भी संदेश है।

इसी पुस्तक के विषय में विश्वमित्र ने लिखा था, 'बच्चन जी की कविताएँ पढ़ते समय हमें इस बात की प्रसन्नता होती है कि हिंदी का यह कवि मानवता का गीत गाता है।'

यह संस्करण भी समाप्त होने को है। अपनी प्रति शीघ्र मँगा लें।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुबाला

(छठा संस्करण)

यह कवि की १९३४-३५ में लिखित 'मधुबाला' 'मालिक मधुशाला', 'मधुपायी', 'पथ का गीत', 'सुराही', 'प्याला', 'हाला', 'जीवन तरुवर', 'प्यास', 'बुलबुल', 'पाटल माल', 'इस पार—उस पार', 'पाँच पुकार', 'पगध्वनि' और 'आत्म परिचय' शीर्षक कविताओं का संग्रह है।

मधुशाला के पश्चात लिखे गए इन नाटकीय गीतों में मधुबाला और मधुपायी ही नहीं प्याला, हाला और सुराही आदि भी सजीव होकर अपना अपना गीत गाने लगे हैं। कवि को मधुशाला का गुणगान करने की आवश्यकता नहीं रह गई, वह स्वयं मस्त होकर आत्म-गान करने लगी है। जिस समय यह गीत लिखे गये थे उस समय 'हाला', 'प्याला', 'मधुशाला' के रूपक हिंदी में नए ही थे, फिर भी कवि ने उन्हें अपने कितने भावों, विचारों और कल्पनाओं का केंद्र बना दिया है इसे आप गीतों को पढ़कर स्वयं देख लेंगे। इन गीतों में आप पाएँगे विचारों की नवीनता, भावों की तीव्रता, कल्पना की प्रचुरता और सुस्पष्टता, भाषा की स्वाभाविकता, छंदों का स्वच्छंद संगीतात्मक प्रवाह और इन सब के ऊपर वह सूक्ष्म शक्ति जो प्रत्येक हृदय को स्पर्श किए बिना नहीं रह सकती कवि का व्यक्तित्व। इन्हीं गीतों के लिए प्रेमचंदजी ने लिखा था कि इनमें बच्चन का अपना व्यक्तित्व है, अपनी शैली है, अपने भाव हैं और अपनी फ़िलासफ़ी है।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुशाला

(सातवाँ संस्करण)

यह कवि की १९३३-३४ में लिखित १३५ रुबाइयों का संग्रह है। हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला के केवल चार प्रतीकों और इन्हीं से मिलने वाले कुछ गिनती के तुकों को लेकर बच्चन ने अपने कितने भावों और विचारों को इन रुबाइयों में भर दिया है इसे वे ही जानते हैं जिन्होंने कभी मधुशाला उनके मुँह से सुनी या स्वयं पढ़ी है। आधुनिक खड़ी बोली की कोई भी पुस्तक मधुशाला के समान लोकप्रिय नहीं हो सकी इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। अब समालोचकों ने स्वीकार कर लिया है कि मधुशाला में सौंदर्य के माध्यम से क्रांति का ज़ोरदार संदेश भी दिया गया है।

कवि ने इसे रुबाइयात उमर ख़ैयाम का अनुवाद करने के पश्चात् लिखा था इस कारण वे उसके बाहरी रूपक से प्रभावित अवश्य हुए हैं परंतु यह भीतर से सर्वथा स्वानुभूत और मौलिक रचना है जिसकी प्रतिध्वनि प्रत्येक भारतीय युवक के हृदय से होती है।

भाव, भाषा, लय और छंद एक दूसरे के इतने अनुरूप बन पड़े हैं कि हिंदी से अपरिचित व्यक्ति भी इसका वैसा ही आनंद लेते हैं जैसा कि हिंदी से सुपरिचित व्यक्ति। आज ही इसे लेकर बैठ जाइए और इसकी मस्ती से झूम उठिए।

नया संस्करण छपकर तैयार है, अपनी प्रति शीघ्र मँगालें।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

ख़ैयाम की मधुशाला

(तीसरा संस्करण)

यह फिट्ज़जेराल्ड कृत रुबाइयात उमर ख़ैयाम का पद्यात्मक हिंदी रूपांतर है जिसे कवि ने सन् १९३३ में उपस्थित किया था। मूल पुस्तक के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इसकी गणना संसार की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में है। अनुवाद में प्रायः मूल का आनंद नहीं आता, परंतु बच्चन के अनुवाद में कहीं आपको यह कमी न दिखाई पड़ेगी। वे एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखने के फेर में नहीं पड़े। उन्होंने उमर ख़ैयाम के भावों को ही प्रधानता दी है। इसी कारण उनकी यह कृति मौलिक रचना का आनंद देती है।

स्वर्गीय प्रेमचंद जी ने जनवरी '३६ के 'हंस' में पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखा था कि 'बच्चन ने उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का अनुवाद नहीं किया ; उसी रंग में डूब गए हैं।' हिंदी में पुस्तक के और अनुवाद भी हैं पर 'लीडर' ने स्पष्टतया लिखा था कि:—

.........Bachchan has a great advantage over many translators in that he himself feels, for all we know, very much like the poet astronomer of Nishapur.

इस संस्करण में पहली बार अनुवाद के साथ-साथ मूल अंग्रेज़ी, और कवि लिखित सार गर्भित भूमिका और टिप्पणी भी दी गई है। यदि आप अंग्रेज़ी से भिज्ञ हैं तो अनुवाद की सफलता को आप स्वयं देख सकेंगे।

यदि आपने पहले-दूसरे संस्करण देखे भी हैं तो हम आपसे इसे पढ़ने का अनुरोध करेंगे।

प्रारंभिक रचनाएँ—तीसरा भाग

पहला संस्करण

इस बात का पता शायद कम ही लोगों को है कि बच्चन ने साहित्य क्षेत्र में पहले-पहल कविताओं के साथ नहीं बल्कि कहानियों के साथ प्रवेश किया था ! 'हरिवंश राय' के नाम से उनकी कई कहानियाँ, 'बच्चन' के नाम से उनकी कविताओं के प्रकाशन से पूर्व हिंदी की प्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं जैसे हंस, सरस्वती, माधुरी आदि में प्रकाशित हो चुकी थीं और काफ़ी पसंद की गई थीं। पर जीवन में कौन ऐसी परिस्थितियाँ आईं जिनसे उनका कवि मुखरित हो उठा और कहानीकार मौन हो गया, इससे संसार अनभिज्ञ है।

बहुत दिनों से बच्चन के ऐसे निकटस्थ परिचितों और मित्रों की, जो उनके कवि में उनके बाल-कहानीकार को न भुला सके थे, यह इच्छा थी कि उनकी कहानियों का एक संग्रह भी प्रकाशित किया जाय। इसी की पूर्ति के लिए सुषमा निकुंज द्वारा 'हृदय की आँखें' नाम से उनकी कहानियों को प्रकाशित करने का विज्ञापन कई वर्ष हुए किया गया था परंतु किसी वजह से पुस्तक छप न सकी।

अब हमने इन्हीं कहानियों को 'प्रारंभिक रचनाएँ' के तीसरे भाग में संगृहीत किया है। कहानियाँ 'प्रारंभिक रचनाएँ' की कविताओं की समकालीन हैं, इस कारण हमें इनका यही नाम देना ठीक जान पड़ा। दोनों को साथ पढ़ने वाले सहज ही इस बात का अनुभव करेंगे कि कैसे लेखक के मस्तिष्क में चार वर्ष तक कवि और कहानीकार दोनों संघर्ष करते रहे हैं और कैसे अंत में कवि विजयी हुआ है। इसका पाठ आपके लिए रोचक और मनोरंजक सिद्ध होगा।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रारंभिक रचनाएँ—दूसरा भाग

(दूसरा संस्करण)

जैसा कि नाम से ही प्रकट है यह प्रारंभिक कविताओं के संग्रह का दूसरा भाग है। प्रारंभिक रचनाएँ, प्रथम भाग की लगभग आधी कविताएँ पहले 'तेरा हार' के नाम से प्रकाशित हो चुकी थीं, परंतु इस भाग की समस्त कविताएँ पहली बार जनता के सामने लाई जा रही हैं, केवल दो कविताएँ, 'कवि के आँसू' 'विशाल भारत' में, और 'ग्रीष्म बयार' 'सुधा' में प्रकाशित हुई थीं।

इस भाग की कविताएँ प्रायः १६३१-३२ के अंदर लिखी गई हैं। देश के इतिहास से परिचित लोग जानते हैं कि यह समय कितनी आशाओं, आयोजनों और दमनों का था। ऐसे समय में एक नवयुवक कवि की प्रतिक्रियाएँ क्या हुईं, इसे जानने के लिए इस पुस्तक का देखना बहुत ज़रूरी है।

बच्चन का अपनी मधुशाला के साथ प्रवेश करना एक साहित्यिक घटना थी। ये कविताएँ मधुशाला की रचना के ठीक पहले की हैं। इन्हें पढ़ने से आपको पता चल जायगा कि इनमें मधुशाला के गायक की तैयारी हो रही थी। शृंगारिकता और क्रांति का जो मिश्रण मधुशाला में दृष्टिगोचर होता है उसकी पहली झलक आपको इन कविताओं में मिलेगी। प्रारंभिक रचनाओं के दूसरे भाग का अंत ही तीन रुबाइयों के साथ होता है और उसके पश्चात ही कवि ने रुबाइयों की वह धारा प्रवाहित की कि जिसमें समस्त हिंदी समाज शराबोर हो उठा।

आप इस पुस्तक को एक बार अवश्य देखिए।